॥ श्रीः ॥

शिवसंहिता.

(भाषाटीकासहिता.)

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकयोगिराजश्री ६ स्वामिस्वयंप्रकाशानन्दसरस्वतीनामाज्ञानुसारेण गोस्वामिश्रीरामचरणपुरीकृतेन भाषानुवादेन सहिता ।

सेयं

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन)

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशंनीता ।

संवत् १९६९, शके १८३४.

प्रस्तावना ।

सर्व मोक्षाकांक्षी महापुरुषोंको विदित हो कि,यह "शिवसंहिता" नामक ग्रंथ जो संसारके उपकारार्थ पूर्व श्रीपार्वतीजीके प्रश्नोत्तर योगमार्गउत्पत्तिकर्त्ता श्रीशिवजीने कृपापूर्वक योगोपदेश किया सो यह ग्रंथ योगाभ्यासी जनोंको अति उपकारक है इस हेतुसे कि, श्रीशिवजीने इसमें ब्रह्मज्ञान और हठयोगक्रिया राजयोगसंहित उत्तम सरलरीतिसे उपदेश किया है. इसको परिश्रमसे लाभ करके योगाभ्यासी और मोक्षाकांक्षी जनोंके उपकारार्थ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकयोगीराज श्री ६ स्वामी स्वयंप्रकाशानन्दसरस्वतीजीके साधक शिष्य काशीनिवासी गोस्वामी रामचरणपुरीजीके द्वारा भाषानुवाद कराय अब चौथी वार शुद्ध करके निज "श्रीवेङ्कटेश्वर"(स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयमें मुद्रित कर प्रसिद्ध किया । अब सर्व शास्त्रवेत्ता बुद्धिमान् जनोंसे प्रार्थना है कि, इस ग्रंथके मूल वा टीकामें जहां कहीं दृष्टिदोषसे अशुद्ध रहा होय उसको कृपापूर्वक सुधारदें.

भवदीय शुभाकांक्षी-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष-मुंबई.

शिवसंहितास्थविषयानुक्रमणिका ।

इत्यनुक्रमणिका ।

ॐ

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शिवसंहिता

भाषाटीकासमेता.

प्रथमपटलः ।

॥ मंगलाचरणम् ॥

श्लोक-यं ज्ञातुमेव यतिनो मतिपूर्वमेतत् सं- सारस्थत्वरकलत्रसुतादिसर्वम् ॥ त्यक्त्वा स- माधिविधिमेव समाश्रयन्ते वन्दे कमप्य- हमजङ्गगदादिबीजम् ॥ १ ॥

विघ्नहरण गणनाथजी, बुद्धिगेह तुअ माहिं ॥
विघ्न बुद्धि दोनों विकल, नशत जात जगमाहिं॥१॥
बुद्धिराज दीजे हमें, बुद्धि पुत्र गौरीश ॥
योगयुक्ति भाषा करौं, धारि गुरुआज्ञा शीश ॥२॥
शिव आलयमें जायके, होत जीव भवपार ॥
पाय कृपा गुरु शम्भुकी, मज्जन चहौं केंदार ॥३॥
गौरी अब मोहिं दीजिए, अनुशासन सुत जानि॥
शिवभाषित भाषा रचौं, छूटौं भवभ्रम जानि॥४॥
फिर नहिं आवौं जगतमें, योग युक्ति सब जानि॥
मातु कृपा मोपर करहु, शिक्षहु देमोहिज्ञान ॥ ५ ॥

नाम हमारो है नहीं, नहीं कर्म गुण त्रास ॥
मातु पुकारत पै अहौं, रामचरणपुरि दास ॥ ६ ॥

मूलम्-एकं ज्ञानं नित्यमाद्यन्तशून्यं नान्यत् किञ्चिद्वर्त्तते वस्तु सत्यम् ॥ यद्भेदोस्मिन्निन्द्रियोपाधिना वै ज्ञानस्यायं भासते नान्यथैव ॥ १ ॥

टीका-केवल एक ज्ञान नित्य आदि अन्तरहित है ज्ञानसे अलग अन्य कोई वस्तु सत्य संसारमें वर्त्तमान नहीं है केवल इन्द्रियोपाधिद्वारा संसार जो भिन्न भिन्न बोध होताहै सो यह ज्ञानमात्रही प्रकाश होता है और कुछ नहीं है अर्थात् ज्ञानसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ १ ॥

मूलम्-अथ भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम् ॥ ईश्वरःसर्वभूतानामात्ममुक्तिप्रदायकः ॥ २ ॥ त्यक्त्वा विवादशीलानां मतं दुर्ज्ञानहेतुकम् ॥ आत्मज्ञानाय भूतानामनन्यगतिचेतसाम् ॥ ३ ॥

टीका-सर्व प्राणिमात्रके ईश्वर आत्ममुक्तिप्रदायक भक्तवत्सल जिन मनुष्योंको सिवाय आत्मज्ञानके अन्य गति नहीं है उनके हेतु कृपापूर्वक योगोप-

देश करते हैं विवादशील लोगोंका मत दुर्ज्ञानका हेतु है यह त्यागनेके योग्य है ॥ २ ॥ ३ ॥

मूलम्-सत्यं केचित्प्रशंसन्ति तपः शौचं तथापरे ॥ क्षमां केचित्प्रशंसंति तथैव सममार्ज्जवम् ॥ ४ ॥ केचिद्दानं प्रशंसन्ति पितृकर्म तथापरे ॥ केचित्कर्म प्रशंसन्ति केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

टीका-कोइ सत्यकी प्रशंसा करते हैं, कोई तपस्याकी, कोई शौचाचारकी, कोई क्षमाकी प्रशंसा, कोई समताकी, कोई सरलताकी, कोई दानकी प्रशंसा, कोई पितृकर्मकी, कोई सकाम उपासनाकी, कोई पुरुष वैराग्यको उत्तम कहतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलम्-केचिद्गृहस्थकर्माणि प्रशंसन्ति विचक्षणाः ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म तथा केचित्परं विदुः ॥ ६ ॥ मन्त्रयोगं प्रशंसन्ति केचित्तीर्थानुसेवनम् ॥ एवं बहूनुपायांस्तु प्रवदन्ति विमुक्तये ॥ ७ ॥

टीका-कोई पुरुष गृहस्थकर्मकी प्रशंसा करते हैं, कोई बुद्धिमान् पुरुष अग्निहोत्रादिक कर्मकी प्रशंसा करते हैं कोई मंत्रादिक कोई तीर्थसेवन करना मुख्य

समझते हैं इसी प्रकार मनुष्य वहुतसे उपाय मुक्तिके हेतु अपनी मतिके अनुसार करते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

मूलम्-एवं व्यवसिता लोके कृत्याकृत्यविदो जनाः ॥ व्यामोहमेव गच्छंति विमुक्ताः पापकर्मभिः ॥ ८ ॥ एतन्मतावलम्बी यो लब्ध्वा दुरितपुण्यके ॥ भ्रमतीत्यवशः सोऽत्र जन्ममृत्युपरम्पराम् ॥ ९ ॥

टीका-इसी तरह विधिनिषेध कर्मके जाननेवाले लोग पापकर्मसे रहित होके मोहमेंही पड़ते हैं और जो मनुष्य पुण्यपापका अनुष्ठान पहिले जो मत कहा है उसके आसरे होके करते हैं उसका फल यह होता है कि, मनुष्य वारंवार संसारमें जनमता और मरता है अर्थात् शुभाशुभ कर्म करनेसे कदापि मोक्ष नहीं होता परन्तु शुभकर्म करनेसे केवल चित्तकी शुद्धि होतीहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

मूलम्-अन्यैर्मतिमतां श्रेष्ठैर्गुप्तालोकनतत्परैः ॥ आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ॥ १० ॥ यद्यत्प्रत्यक्षविषयं तदन्यन्नास्ति चक्षते ॥ कुतः स्वर्गादयः सन्तीत्यन्ये निश्चितमानसाः ॥ ११ ॥

टीका–कोई कोई बुद्धिमान् गुप्तशास्त्रके जाननेमें तत्पर अर्थात् गूढदर्शी बहुत आत्मा नित्य और सर्वव्यापक कहते हैं बहुत प्रत्यक्षवादी यह कहते हैं कि, जो वस्तु प्रत्यक्ष देखनेमें आताहै वही सत्य है और कुछ नहीं है जिनकी बुद्धि स्वर्गादिकके न माननेमें निश्चित है ॥ १० ॥ ११ ॥

मूलं–ज्ञानप्रवाह इत्यन्ये शून्यं कश्चित्परं विदुः ॥ द्वावेव तत्त्वं मन्यन्तेऽपरे प्रकृतिपूरुषौ ॥ १२ ॥

टीका–कोई मनुष्य कहते हैं कि, सिवाय ज्ञानधाराके और कुछ नहीं है जो वस्तु संसारमें वर्तमान देखने या सुननेमें आती है या किसी प्रकारसे उसका होना निश्चय होताहै वह सब ज्ञानही है कोई पुरुष यही जानता है कि, सिवाय शून्यके और कुछ नहीं है इसी तरह कोई मनुष्य प्रकृतिपुरुष दोनोंको तत्त्व मानते हैं॥ १२ ॥

मूलम्–अत्यन्तभिन्नमतयः परमार्थपराङ्मुखाः ॥ एवमन्ये तु संचिन्त्य यथामति यथाश्रुतम् ॥ १३ ॥ निरीश्वरमिदं प्राहुः सेश्वरञ्च तथापरे ॥ वदन्ति विविधैर्भेदैः सुयुक्त्या स्थितिकातराः ॥ १४ ॥

टीका-बहुतसे परमार्थसे बहिर्मुख जिनकी भिन्न भिन्न मति है अपनी मतिके अनुसार कर्मोंको मानते और करते हैं कोई कहते हैं कि,ईश्वर नहीं है इसीतरह बहुत लोग कहते हैं कि,यह संसार बिना ईश्वरके नहीं है, अर्थात ईश्वरहीसे है यही निश्चय जानते हैं अपनी युक्तिसे बहुत २ भेद कहते और उसमें स्थिरतासे तत्पर रहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलम्-एते चान्ये च मुनिभिः संज्ञाभेदा पृथग्विधाः ॥ शास्त्रेषु कथिता ह्येते लोक-व्यामोहकारकाः ॥१५॥ एतद्विवादशीला-नां मतं वक्तुं न शक्यते ॥ भ्रमन्त्यस्मि-ञ्जनाःसर्वे मुक्तिमार्गबहिष्कृताः ॥ १६ ॥

टीका-ऐसे बहुत मुनिलोगोंने नानाप्रकारके मत शास्त्रमें स्थापन किये हैं यह संसारके मोह भ्रममें पड़नेका हेतु है अर्थात् शास्त्रमें बहुत प्रकारके मत दे-खनेसे मनुष्यके चित्तमें भ्रम उत्पन्न होता है उस भ्रम-का फल यह है कि, अपनी बुद्धिके अनुसार कोई एक मत ग्रहण करके मरणपर्यंत उसमें तत्पर मनुष्य रह-ताहै परंतु अमृत लाभ नहीं होता ऐसे विवादशील लोगोंके मत वर्णन करनेको हम शक्य नहीं हैं ।

मुक्तिमार्गसे विमुख होके सब मनुष्य संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

मूलम्-आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥ इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम् ॥ १७ ॥

टीका--श्रीमहादेवजी कहते हैं कि,सब शास्त्रोंको देखके और वारंवार विचारके यह निश्चित हुआ कि,एक यह योगशास्त्र उत्तम परमसंमत है अर्थात् यह सबसे उत्तमहै तात्पर्य यह है कि,ऐसे मतको छोड़कर जिसकी प्रशंसा ईश्वर अपने मुखारविन्दसे करते हैं और जिसके ग्रहण करनेसे ब्रह्म करामलकवत् जानपडता है मनुष्य विक्षिप्तके तरह इधर उधर चित्तको दौड़ाते हैं और बहुत लोग यह विचारते हैं कि,यह बड़ा कठिन है आश्चर्यकी बात है कि,मनुष्यशरीरसे जब ऐसा उत्तम श्रम न होगा तो जान पडता है कि,रोगादिकसे शरीरके नाश होनेसे पीछे फिर जब पशुका जन्म होगा तब कुछ ईश्वरके जाननेमें श्रम करेंगे ॥ १७ ॥

मूलम्-यस्मिञ्ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति निश्चितम् ॥ तस्मिन्परिश्रमः कार्यः किमन्यच्छास्त्रभाषितम् ॥ १८ ॥

टीका-निश्चय जिसके जाननेसे सब संसार जाना जाता है ऐसे योगशास्त्रके जाननेमें परिश्रम करना अवश्य उचितहै फिर अन्य शास्त्र जो कहेहैं उनका क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछ प्रयोजन नहीं तात्पर्य यह है कि,पंडित लोग वृथा विवाद करके जो लोग सुमार्गमें जानेकी इच्छा करते हैं उनको भी भ्रष्ट कर देते हैं ॥ १८ ॥

मूलम्-योगशास्त्रमिदं गोप्यमस्माभिः परिभाषितम् ॥ सुभक्ताय प्रदातव्यं त्रैलोक्ये च महात्मने ॥ १९ ॥

टीका-यह योगशास्त्र जो हमने कहाहै सो परम गोपनीय है यह त्रैलोक्यमें महात्मा और अच्छे भक्त जनोंको देना उचित है तात्पर्य यह है कि,विना ईश्वरकी भक्तिके यह शुभकर्म सिद्ध नहीं होता न उधर चित्तकी वृत्ति जाती है इस हेतुसे अभक्तजनोंको देना उचित नहीं है ॥ १९ ॥

मूलम्-कर्मकाण्डं ज्ञानकाण्डमिति वेदो द्विधा मतः ॥ भवति द्विविधो भेदो ज्ञानकाण्डस्य कर्मणः ॥ २० ॥ द्विविधः कर्मकाण्डः स्यान्निषेधविधिपूर्वकः ॥ निषिद्धकर्मकरणे पापं भवति निश्चितम् ॥ विधि-

ना कर्मकरणे पुण्यं भवति निश्चितम्॥२१॥

टीका—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड वेदके दो मत हैं इसमेंभी दो दो भेद कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डमें भये हैं ॥ २० ॥ उस कर्मकाण्डमें दो प्रकार हैं एक निषेध दूसरा विधि तहां निषेध कर्म करनेसे निश्चय पाप होताहै विहित कर्म करनेसे निश्चय करके पुण्य होता है ॥१॥

मूलम्—त्रिविधो विधिकूटः स्यान्नित्यनैमि-त्तकाम्यतः ॥ नित्येऽकृते किल्बिषं स्या-त्काम्ये नैमित्तिके फलम् ॥ २२ ॥

टीका—विधि कर्ममें तीन प्रकारका भेद कहा है नित्य १ नैमित्तिक २ सकाम ३ नित्यकर्म संध्या देवार्चन आदि न करनेसे पाप होता है सकाम अर्थात् जो कर्म फलकी इच्छासे किया जाताहै और नैमित्तिक जो तीर्थोंमें पर्वादिकमें स्नानादिक करते हैं इनके न करनेसे पाप नहीं होता परन्तु करनेसे फल होता है॥ २२ ॥

मूलं—द्विविधन्तु फलं ज्ञेयं स्वर्गो नरक एव च ॥ स्वर्गो नानाविधश्चैव नरकोपि तथा भवेत् ॥ २३ ॥

टीका—फल दो प्रकारका होता है स्वर्ग और नरक स्वर्ग नानाप्रकारका है ऐसेही नरकभी बहुत प्रकारका

है तात्पर्य यह है कि, जैसा जो मनुष्य शुभाशुभ कर्म करता है वैसेही नरक वा स्वर्गमें जाताहै ॥ २३ ॥

मूलम्-पुण्यकर्मणि वै स्वर्गो नरकः पापकर्मणि ॥ कर्मबंधमयी सृष्टिर्नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ २४ ॥

टीका-पुण्यकर्म करनेसे स्वर्गमें जाताहै और पापकर्मसे नरकमें जाताहै. संसार कर्मसे निश्चय करके बँधाहै दूसरा हेतु नहीं है तात्पर्य यह है कि, जो ईश्वरको जानके कर्माकर्मसे अपनेको रहित समझेगा वह इस बंधनसे छूटजागया ॥ २४ ॥

मूलम्-जन्तुभिश्चानुभूयंते स्वर्गे नानासुखानि च ॥ नानाविधानि दुःखानि नरके दुःसहानि वै ॥ २५ ॥

टीका-प्राणी स्वर्गमें नानाप्रकारके सुखका अनुभव करता है ऐसेही बहुत प्रकारके दुःसह दुःख नरकमें भी भोगता है ॥ २५ ॥

लम्-पापकर्मवशाद्दुःखं पुण्यकर्मवशात्सुखम् तस्मात्सुखार्थी विविधं पुण्यं प्रकुरुते ध्रुवम् २६

टीका-पापकर्म करनेसे दुःख होता है और पुण्यकर्म करनेसे सुख होता है इस हेतुसे निश्चय करके सुखार्थी पुरुष नानाप्रकारके पुण्य करते हैं ॥ २६ ॥

मूलम्-पापभोगावसाने तु पुनर्जन्म भवे त्खलु ॥ पुण्यभोगावसाने तु नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ २७ ॥

टीका-पापका फल भोगनेके पीछे अवश्य फिर जन्म होताहै ऐसेही पुण्यफल भोगनेके अंतमें निश्चय फिर जन्म होता है अन्यथा नहीं होता ॥२७॥

मूलम्-स्वर्गेऽपि दुःखसंभोगः परस्त्रीदर्शना-द्ध्रुवम ॥ ततो दुःखमिदं सर्वं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ २८ ॥

टीका-स्वर्गमेंभी दुःख है इस कारणसे कि, उस-स्थानमें परस्त्रीका दर्शन अवश्य होताहै उसकी अप्रा-प्तिमें मानसिक व्यथा उत्पन्न होतीहै अन्यथा भी राग-द्वेषादि बहुतसे कारण हैं कि,प्राणीके चित्तको स्वर्गमें भी स्थिर नहीं रहने देते इस हेतुसे संसारमें सिवाय दुःखके सुख नहीं है ॥ २८ ॥

मूलम्-तत्कर्मकल्पकैः प्रोक्तं पुण्यं पापमि-ति द्विधा ॥ पुण्यपापमयो बन्धो देहिनां भवति क्रमात् ॥ २९ ॥

टीका-बुद्धिमान् लोगोंने पुण्य और पाप दो प्रकारक

कर्म कहाहै इसी पुण्य पापसे शरीर वंधायमान है अर्थात् वारंवार शरीर धारण करनेका कारण है॥२९॥

मूलम्-इहामुत्र फलद्वेषी सफलं कर्म संत्यजेत् ॥ नित्यनैमित्तिके संगं त्यक्त्वा योगे प्रवर्तते ॥ ३० ॥

टीका-इस लोकका भोग वा परलोकके फलकी इच्छा और नित्य नैमित्तिक आदि कर्मोंको फलरहित त्यागके योगाभ्यास अर्थात् परब्रह्मके विचारमें महात्मा जनोंको तत्पर रहना उचित है ॥ ३० ॥

मूलम्-कर्मकाण्डस्य माहात्म्यं ज्ञात्वा योगी त्यजेत्सुधीः ॥ पुण्यपापद्वयं त्यक्त्वा ज्ञानकाण्डे प्रवर्तते ॥ ३१ ॥

टीका-कर्मकाण्डके माहात्म्यको जानके योगीको उचित है कि, पुण्य पाप दोनोंको तृणवत् विचारके त्याग दे और ज्ञानकाण्डमें तत्पर होरहे ॥ ३१ ॥

मूलम्-आत्मा वाऽरे च श्रोतव्यो मंतव्य इति यच्छ्रुतिः ॥ सा सेव्या तत्प्रयत्नेन मुक्तिदा हेतुदायिनी ॥ ३२ ॥

टीका-यह श्रुतिका वाक्य है कि, आत्माको सुनो और आत्माको मनन करो अर्थात् जो कुछ

है सो आत्माही है सो श्रुति मुक्तिकी देनेवाली है यत्न करके सेवनके योग्य है ॥ ३२ ॥

मूलम्–दुरितेषु च पुण्येषु यो धीवृत्तिं प्रचोदयात् ॥ सोऽहं प्रवर्त्तते मत्तो जगत्सर्वं चराचरम् ॥ ३३ ॥ सर्वं च दृश्यते मत्तः सर्वं च मयि लीयते ॥ न तद्भिन्नोऽहमस्मीह मद्भिन्नो न तु किंचन॥३४॥

टीका–पाप पुण्य दोनोंमें समानरूपकी बुद्धिको जो वृत्ति प्रेरणा करतीहै सो हम हैं और हमसेही सब जगत् चराचर उत्पन्न है॥ ३३ ॥ और जो देख पड़ताहै वह सब हम हैं हममेंही सब लीन होताहै न वह हमसे भिन्न है न हम उससे किंचित् मात्र भिन्न हैं तात्पर्य यह है कि, वह आत्मा जिससे यह जगत् उत्पन्न है हमसे भिन्न नहीं है इस हेतुसे इस संसारके स्थितिसंहारकर्त्ता हम हैं ऐसी वृत्ति योगीकी रहती है॥ ३४॥

मूलम्–जलपूर्णेष्वसंख्येषु शरावेषु यथा भवेत॥ एकस्य भात्यसंख्यत्वं तद्भेदोऽत्र न दृश्यते ॥३५॥ उपाधिषु शरावेषु या संख्या वर्त्तते परा ॥ सा संख्या भवति यथा रवौ चात्मनि तत्तथा ॥ ३६ ॥

टीका–जलसे भरे असंख्य शराव अर्थात मृत्तिका आदिके पात्रमें एक सूर्यका अनेक प्रतिबिंब देख-पडता है वास्तवमें भेद नहीं है जो भेद देख-पडता है वह शरावके संख्याका भेद है ॥ ३५ ॥ जिस प्रकारसे शरावकी संख्यासे सूर्यमें भेद जान पडताहै उसी प्रकार मायाकी उपाधिसे संसार भिन्न भिन्न जान पडता है वस्तुतः केवल एक ब्रह्म है॥३६॥

मूलम्–यथैकः कल्पकः स्वप्ने नानाविधित-
येष्यते ॥ जागरेपि तथाप्येकस्तथैव
बहुधा जगत् ॥ ३७ ॥

टीका–जैसे स्वप्न अवस्थामें एकसे अनेक कल्पना होतीहै निद्राच्युत होजानेपर कुछ नहीं रहता उसी प्रकार मायाके आवरणसे अनेक संसार जान पडता-है जब ज्ञानरूपी खड्गसे मायाका पटल कटजाता है तब सिवाय शुद्ध ब्रह्मके और कुछ नहीं रहजाता३७॥

मूलम्–सर्पबुद्धिर्यथा रज्जौ शुक्तौ वा रजत-
भ्रमः॥३८॥तद्वदेवमिदं विश्वं विवृतं पर-
मात्मनि॥रज्जुज्ञानाद्यथा सर्पो मिथ्या-
रूपो निवर्तते ॥३९॥ आत्मज्ञानात्तथा
याति मिथ्याभूतमिदं जगत॥रौप्यभ्रा-
न्तिरियं याति शुक्तिज्ञानाद्यथा खलु४०

टीका–रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति और सीपीमें चाँदीकी भ्रान्ति होती है॥३८॥उसी प्रकार शुद्धब्रह्ममें संसारकी झूँठी भ्रान्ति होती है रस्सीके ज्ञान होनेसे झूँठ सर्पका अभाव होजाता है॥३९॥उसी तरह आत्मज्ञान होनेसे यह संसार नहीं रहजाता सीपीकोभी अच्छी तरह निश्चय जानलेनेसे चाँदीकी भ्रांति दूर होती है ॥४०॥

मूलम्-जगद्भ्रान्तिरियं याति चात्मज्ञानाद्य-
था तथा ॥ यथा रज्जूरगभ्रान्तिर्भवेद्भ्र-
दवशाज्जगत् ॥ ४१ ॥ तथा जगदिदं
भ्रांतिरध्यासकल्पनाज्जगत् ॥ आत्मज्ञाना-
द्यथा नास्ति रज्जुज्ञानाद्भुजङ्गमः ॥ ४२ ॥

टीका–वैसेही आत्मज्ञान होनेसे जगत्की भ्रान्ति दूर होती है जैसे रस्सीमें सर्पकी भ्रांति होतीहै॥ ४१ ॥ उसी तरह आत्मामें अध्यास कल्पनामात्र जगत्की भ्रांति है रज्जुवत् ज्ञान होनेसे फिर जगत्का तीनों कालसे अभाव हो जाताहै ॥ ४२ ॥

मूलम्-यथा दोषवशाच्छुक्लःपीतो भवति ना-
न्यथा ॥ अज्ञानदोषादात्मापि जगद्भवति
दुस्त्यजम् ॥ ४३ ॥ दोषनाशे यथा शुक्लो

गृह्यते रोगिणा स्वयम् ॥ शुक्लज्ञानात्तथाऽज्ञाननाशादात्मा तथा कृतः ॥ ४४ ॥

टीका–जैसे मनुष्यको कवलकी व्याधि अर्थात् पित्तादिकके दोपसे सब वस्तु निश्चय पीतवर्ण देख पड़ती हैं उसी प्रकार अज्ञानरूपी दोपसे शुद्ध आत्मा नहीं प्रतीत होता है परन्तु यह झूँठा संसार देख पड़ता है ऐसा अज्ञान बड़े कष्टसे दूर होताहै जैसे पित्तादिक दोपके नाश होनेसे फिर यथार्थ देख पडता है उसी प्रकार अज्ञान दूर होनेसे शुद्ध ब्रह्म निर्विकार जानपडता है तात्पर्य यह है कि,मनुष्यके पीछे एक अज्ञानकी व्याधि बहुत बडी लगी है इसकी औपधि आत्मज्ञान है यह बात निश्चय है कि, व्याधि विना औपधिके दूर नहीं होती ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

मूलम्-कालत्रयेपि न यथा रज्जुः सर्पो भवेदिति ॥ तथात्मा न भवेद्विश्वं गुणातीतो निरञ्जनः ॥ ४५ ॥

टीका–जिस तरह रस्सी तीनों कालमें सर्प नहीं हो सकती उसी तरह आत्माभी तीनों कालमें कदापि संसार नहीं हो सक्ता अर्थात् नहीं है इस हेतुसे कि,आत्मा गुणातीत है अर्थात् गुणसे रहित है ॥ ४५ ॥

मूलम्-आगमाऽपायिनोऽनित्यानाश्यत्वेनेश्वरादयः ॥ आत्मबोधेन केनापि शास्त्रादेतद्विनिश्चितम् ॥ ४६ ॥

टीका—वह शास्त्र जिसमें आत्मबोधका निरूपण किया है उससे निश्चय है कि, इन्द्रादि देवताभी जो ईश्वर कहे जाते हैं नित्यभावसे रहित हैं अर्थात् उनकाभी जनन मरण होताहै ॥ ४६ ॥

मूलम्—यथा वातवशात्सिन्धावुत्पन्नाः फेनबुद्बुदाः ॥ तथात्मनि समुद्भूतं संसारं क्षणभंगुरम् ॥ ४७ ॥

टीका—जैसे वायुकी उपाधिसे समुद्रमें फेन और बुद्बुदे उत्पन्न होते हैं क्षणभरमें फिर उसीमें लय होजाते हैं तैसेही आत्मासे संसार मायाकी उपाधिसे क्षणभंगी उत्पन्न होताहै फिर उसीमें लय होजाताहै ॥४७॥

मूलम्—अभेदो भासते नित्यं वस्तुभेदो न भासते ॥ द्विधात्रिधादिभेदोऽयं भ्रमत्वे पर्यवस्यति ॥ ४८ ॥

टीका—परमात्माका संसारसे सदा अभेद है और किसी वस्तुमें भेद नहीं है एक दो तीन ऐसा जो वस्तुका भेद जानपडताहै वह भ्रमका कारण है ॥ ४८ ॥

मूलम्-यद्भूतं यच्च भाव्यं वै मूर्तामूर्तं तथैव च ॥ सर्वमेव जगदिदं विवृतं परमात्मनि ॥ ४९ ॥

टीका-जो भया है और जो होगा मूर्तिमान् वा अमूर्तिमान् यह सब जगत् आत्मासे मिला है अर्थात् उससे भिन्न नहीं है ॥ ४९ ॥

मूलम्-कल्पकैः कल्पिता विद्या मिथ्या जाता मृषात्मिका ॥ एतन्मूलं जगदिदं कथं सत्यं भविष्यति ॥ ५० ॥

टीका-यह संसार मिथ्याभूत अविद्याकल्पनासे कल्पित भया है बडे आश्चर्यकी बात है कि, जिसकी जड मिथ्या है वह आप कब सत्य होसक्ता है अर्थात् सब झूठ है ॥ ५० ॥

मूलम्-चैतन्यात्सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य चैतन्यं तं समाश्रयेत ॥ ५१ ॥

टीका-केवल एक चैतन्य ब्रह्मसे जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज आदि सकल चराचर संसार उपन्न भया है इस हेतुसे सबको त्यागिके केवल उसी एक

चैतन्य आत्माके आसरे होना उचित है क्यों कि वही चैतन्य सबका कारण है ॥ ५१ ॥

मूलम्-घटस्याभ्यंतरे वाह्ये यथाकाशं प्रवर्तते ॥ तथात्माभ्यंतरे वाह्ये ब्रह्मांडस्य प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

टीका-जैसे घटके भीतर वाहर आकाश व्याप्त है तैसेही इस ब्रह्माण्डके भीतर वाहर आत्मा परिपूर्ण व्याप्त है ॥ ५२ ॥

मूलम्-सततं सर्वभूतेषु यथाकाशं प्रवर्तते॥ तथात्माभ्यंतरे वाह्ये ब्रह्मांडस्य प्रवर्तते ॥ ५३ ॥ वर्तते सर्वभूतेषु यथाकाशं समंततः ॥ तथात्माभ्यंतरे वाह्ये कार्यवर्गेषु नित्यशः ॥ ५४ ॥

टीका-जिसप्रकार आकाश सब चराचरमें व्याप्त है उसीतरह आत्माभी इस जगत्‌में व्याप्त है अर्थात्आकाशवत् सब वस्तुमें आत्मा परिपूर्ण व्याप्त है॥५३॥५४॥

मूलम्-असंलग्नं यथाकाशं मिथ्याभूतेषु पंचसु ॥ असंलग्नस्तथात्मा तु कार्यवर्गेषु नान्यथा ॥ ५५ ॥

टीका–जिसतरह आकाश सब वस्तुमें मिला है और सबसे अलग है उसीतरह परमात्मा सब वस्तु चराचरमें व्याप्त है और सबसे अलग है ॥ ५५ ॥

मूलम्–ईश्वरादिजगत्सर्वमात्मव्याप्यं समन्ततः ॥ एकोऽस्ति सच्चिदानंदः पूर्णो द्वैतविवर्जितः ॥ ५६ ॥

टीका–ब्रह्मा आदि सब जगत्में वही एक आत्मा परिपूर्ण व्याप्त है वह एक सच्चिदानन्द परिपूर्ण द्वैतरहित है अर्थात् दूसरा कुछ नहीं है ॥ ५६ ॥

मूलम्–यस्मात्प्रकाशको नास्ति स्वप्रकाशो भवेत्ततः ॥ स्वप्रकाशो यतस्तस्मादात्मा ज्योतिःस्वरूपकः ॥ ५७ ॥

टीका–जिसका कोई प्रकाशक नहीं है वह आपही प्रकाशमान है जो आपही प्रकाशमान है वह आत्मा ज्योतिःस्वरूप है ॥ ५७ ॥

मूलम्–अवच्छिन्नो यतो नास्ति देशकालस्वरूपतः ॥ आत्मनः सर्वथा तस्मादात्मा पूर्णो भवेत्खलु ॥ ५८ ॥

टीका–देश करके वा कालके प्रमाणसे वह परिच्छिन्न नहीं है अर्थात् उसका इयंतापरिमाण नहीं है न

उसमें कालका नियम है. इस हेतुसे आत्मा सर्वथा निश्चय परिपूर्ण है ॥ ५८ ॥

मूलम्-यस्मान्न विद्यते नाशः पंचभूतैर्वृथात्मकैः ॥ तस्मादात्मा भवेन्नित्यस्तन्नाशो न भवेत्खलु ॥ ५९ ॥

टीका-यह जो मिथ्या पंचभूत हैं इनसे उसका नाश नहीं है इस कारणसे आत्मा नित्य है और यह निश्चय है कि उसका कभी नाश नहीं होता ॥ ५९ ॥

मूलम्-यस्मात्तदन्यो नास्तीह तस्मादेकोऽस्ति सर्वदा॥यस्मात्तदन्यो मिथ्या स्यादात्मा सत्यो भवेत्खलु ॥ ६० ॥

टीका-जब दूसरा कुछ नहीं है तो एक वही सर्वदा अद्वैत है जब उसके सिवाय अर्थात् उससे अन्य सब मिथ्या है तो वही एक शुद्ध आत्मा सत्य है ॥ ६० ॥

मूलम्-अविद्याभूतसंसारे दुःखनाशे सुखं यतः ॥ ज्ञानादाद्यंतशून्यं स्यात्तस्मादात्मा भवेत्सुखम् ॥ ६१ ॥

टीका-यह संसार अविद्यासे उत्पन्न भया है. इसमें दुःखका नाश होनेपर सुख होता है और ज्ञानसे

दुःखका आदि अंत शून्य है इस हेतुसे निश्चय आत्मा सुखस्वरूप है ॥ ६१ ॥

मूलम्-यस्मान्नाशितमज्ञानं ज्ञानेन विश्व-कारणम् ॥ तस्मादात्मा भवेज्ज्ञानं ज्ञानं तस्मात्सनातनम् ॥ ६२ ॥

टीका--जिसकरके अज्ञान नाश होताहै और यह जान पड़ताहै कि अज्ञानही संसारका कारण है सोई आत्मज्ञान है और ज्ञानही नित्य है ॥ ६२ ॥

मूलम्-कालतो विविधं विश्वं यदा चैव भवे-दिदम् ॥ तदेकोऽस्ति स एवात्मा कल्प-नापथवर्जितः ॥ ६३ ॥

टीका--काल पायके अनेक प्रकारका संसार उत्पन्न होताहै, सो वह एक आत्मा है वह कल्पनापथवार्जित है अर्थात् कल्पना नहीं होसक्ती ॥ ६३ ॥

मूलम्-बाह्यानि सर्वभूतानि विनाशं यान्ति कालतः ॥ यतो वाचो निवर्त्तते आत्मा द्वैतविवर्जितः ॥ ६४ ॥

टीका--आत्मासे जो अतिरिक्त वस्तु उत्पन्न हैं वह काल पायके नाश होजाती हैं आत्मा द्वैतरहित है

अर्थात् एक है इसका वर्णन नहीं होसक्ता तात्पर्य यह है कि यावत् वस्तु उत्पन्न होती है उसको काल खाजाताहै परन्तु आत्मामें कालकाभी नाश होजाताहै॥ ६४॥

मूलम्-न खं वायुर्न चाग्निश्च न जलं पृथिवी-
न च ॥ नैतत्कार्यं नेश्वरादि पूर्णैकात्मा
भवेत्खलु ॥ ६५ ॥

टीका-वह आकाश नहीं है इस हेतुसे कि उसमें शब्द नहीं है वायु नहीं है क्यों कि उसमें स्पर्श नहीं है अग्नि नहीं है काहेसे कि उसमें तेजभाव नहीं है जल नहीं है क्यों कि उसमें रस नहीं है वह पृथ्वी नहीं है क्यों कि गन्धरहित है वह कार्य नहीं है क्यों कि उसका कारण नही हैं वह ब्रह्मा इंद्र आदि ईश्वर नहीं है इस हेतुसे कि उसका नाश नहीं होता अर्थात् वह आत्मा न आकाश न वायु न अग्नि न जल न पृथ्वी कुछ नहीं है निश्चय केवल एक परिपूर्णब्रह्म है ॥ ६५ ॥

मूलम्-आत्मानमात्मनो योगी पश्यत्या-
त्मनि निश्चितम् ॥ सर्वसंकल्पसंन्यासी
त्यक्तमिथ्याभवग्रहः ॥ ६६ ॥

टीक-।यह मिथ्यासंसाररूपी गृहको त्यागके सर्व

संकल्पसे रहित होके योगी आत्मासे आत्माको आत्मामें देखता है ॥ ६६ ॥

मूलम्--आत्मनात्मनि चात्मानं दृष्ट्वानन्तं सुखात्मकम्॥विस्मृत्य विश्वं रमते समाधेस्तीव्रतस्तथा ॥ ६७ ॥

टीका--संसार विस्मृति करके अर्थात् भुलाके आत्मासे आत्माको आत्मारूप होके देखता और आत्माके आनन्द सुखरूपी तीव्र समाधिमें योगी रमण करता है ॥ ६७ ॥

मूलम्--मायैव विश्वजननी नान्या तत्त्वधिया परा ॥ यदा नाशं समायाति विश्वं नास्ति तदा खलु ॥ ६८ ॥

टीका--माया संसारकी माता है अर्थात् मायासेही संसार उत्पन्न भया है यह निश्चय है कि दुसरा हेतु इस जगत्के उत्पत्तिका नहीं है ज्ञान करके इस मायाके नाश होनेसे संसारका अभाव निश्चय जानपडताहै ६८॥

मूलम्--हेयं सर्वमिदं यस्य मायाविलसितं यतः ॥ ततो न प्रीतिविषयस्तनुवित्तसुखात्मकः ॥ ६९ ॥

टीका–यह जूँठा मायाका प्रपंच विषयसुख धन शरीर है इनमें प्रीति करना उचित नहीं है यह सब त्यागनेके योग्य है ॥ ६९ ॥

मूलम्–अरिर्मित्रमुदासीनस्त्रिविधं स्यादिदं जगत् ॥ व्यवहारेषु नियतं दृश्यते नान्यथा पुनः ॥ ७० ॥

टीका–शत्रु मित्र उदासीनता यही तीन प्रकारके व्यवहारका प्रवाह संसारमें निश्चय देखपड़ताहै॥७०॥

मूलम्–प्रियाप्रियादिभेदस्तु वस्तुषु नियतः स्फुटम् ॥ आत्मोपाधिवशादेवं भवेत्पुत्रादि नान्यथा ॥७१॥ मायाविलसितं विश्वं ज्ञात्वैवं श्रुतियुक्तितः ॥ अध्यारोपापवादाभ्यां लयं कुर्वन्ति योगिनः ॥ ७२ ॥

टीका–और प्रिय अप्रिय यही दो भेदसे जगत् बँधा है॥ आत्माके उपाधिसे पिता पुत्रादि होतेहैं यह जगत् मायासे विलसितहै यह श्रुति प्रमाणसे जानके योगीलोग अध्यारोप अपवादसे आत्मामें लय करतेहैं अर्थात् शुद्ध चैतन्यका मनन करतेहैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

मूलम्–कर्मजन्यं विश्वमिदं नत्वकर्मणि

वेदना ॥ निखिलोपाधिहीनो वै यदा भवति पूरुषः ॥ ७३ ॥

टीका–इस जगत्की स्थिति कर्मसे है अर्थात् सुख दुःख जन्म मरण आदि क्लेशोंका कारण कर्मही है अकर्म होजानेसे फिर कुछ दुःख नहीं है यावत् मायाके उपाधिको जब पुरुष जीतके उससे रहित होजाता है ॥ ७३ ॥

मूलम्–तदा विजयतेऽखंडज्ञानरूपी निरंजनः ॥ स हि कामयते पुरुषः सृजते च प्रजाः स्वयम् ॥ ७४ ॥

टीका–तब अखंडज्ञानरूपी निरंजनका भान होताहै ॥ आत्मा अपने इनीसे जगत् सृजता अर्थात् उत्पन्न करता है ॥७४॥

मूलम्–अविद्या भासते यस्मात्तस्मान्मिथ्या स्वभावतः ॥ शुद्धे ब्रह्मणि संबद्धो विद्यया सहजो भवेत् ॥ ७५ ॥

टीका–यह इच्छा अविद्याका कार्य है अविद्या नाम ७५। ,, है तो जब इच्छाही मिथ्या मायासे उत्पन्न है तो उस इच्छाका कार्य कब सत्य होसक्ताहै तात्पर्य यह है कि,मायाके उपाधिसे आत्माका यह इच्छाभूत

संसार मनोराज्यवत् है. जैसे मनुष्यका मनोराज्य मिथ्या है, उसी प्रकार आत्माका इच्छाभूत यह जगत्भी मिथ्या है शुद्धब्रह्ममें ज्ञानरूपी विद्याका संबन्ध है ॥ ७६ ॥

मूलम्-ब्रह्मतेजोंऽशतो याति तत आयासते नभः ॥ तस्मात्प्रकाशते वायुर्वायोरग्निस्ततो जलम् ॥७६॥ प्रकाशते ततः पृथ्वी कल्पनेयं स्थिता सति ॥ आकाशाद्वायुराकाशपवनादग्निसंभवः ॥ ७७ ॥

टीका-इस ब्रह्मके तेजअंशसे आकाश उत्पन्न भया, आकाशसे वायु उत्पन्न भया, वायुसे अग्नि उत्पन्न भया, अग्निसे जल भया, जलसे पृथ्वी उत्पन्न भई, यह कल्पना है आकाशसे वायु उत्पन्न भया और आकाश वायुसे तेज उत्पन्न भया ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

मूलम्-खवाताग्नेर्जलं व्योमवाताग्निवारितो मही ॥ खं शब्दलक्षणं वायुश्चंचलः स्पर्शलक्षणः ॥७८॥ स्याद्रूपलक्षणं तेजः सलिलं रसलक्षणम् ॥ गन्धलक्षणिका पृथ्वी नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ ७९ ॥

विशेषगुणाः प्रस्फुरंति यतः शास्त्रादि-
निर्णयः ॥ शब्दैकगुणमाकाशं द्विगुणो
वायुरुच्यते ॥ ८० ॥ तथैव त्रिगुणं तेजो
भवन्त्यापश्चतुर्गुणाः॥शब्दः स्पर्शश्च रूपं
च रसो गन्धस्तथैव च॥८१॥एतत्पंचगु-
णा पृथ्वी कल्पकैः कल्प्यतेऽधुना॥ च-
क्षुषा गृह्यते रूपं गन्धो घ्राणेन गृह्यते॥८२॥

टीका–और आकाश वायु अग्निसे जल उत्पन्न भया और इन चारोंसे पृथ्वी उत्पन्न भई, शब्दगुण आकाशका है और स्पर्शगुण वायुका है, रूपगुण तेजका है, रसगुण जलका है और पृथ्वीका गुण गंध है. इन पांच तत्त्वोंमें यह गुण जो ऊपर कहा है विशेष है यह शास्त्रसे निर्णय भयाहै अन्यथा नहीं है निश्चय है कि, आकाशमें एक शब्दगुण है, वायुमें दो गुणहैं अग्निमें तीन गुण हैं और जलमें चार गुण हैं; पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध, यह पांचों गुण कल्पित हैं नेत्र रूपको ग्रहण करताहै और नासिका गंध ग्रहण करती ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

मूलम्–रसो रसनया स्पर्शस्त्वचा संगृह्यते

परम्॥श्रोत्रेण गृह्यते शब्दो नियतं भाति नान्यथा ॥ ८३ ॥

टीका-और जिह्वासे रस ग्रहण होताहै और स्पर्श त्वचा अर्थात् शरीरके चर्मसे ग्रहण होताहै वा बोध होताहै और शब्द कर्णसे ग्रहण होता है यह निश्चय है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ८३ ॥

मूलम्-चैतन्यात्सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ अस्ति चेत्कल्पनेयं स्यान्नास्ति चेदस्ति चिन्मयम्॥ ८४ ॥

टीका-सब जगत् चराचर उसी एक चैतन्यसे उत्पन्न भया है यदि संसार सत्य मानाजाय तो इस प्रकारसे कल्पना भईहै और जो संसारका अभाव है अर्थात् नहीं है तो वही एक चैतन्य आत्मा है और कुछ नहीं है ॥ ८४ ॥

मूलम्-पृथ्वी शीर्णा जले मग्ना जलं मग्नञ्च तेजसि ॥ लीनं वायौ तथा तेजो व्योम्नि वातो लयं ययौ ॥ ८५ ॥

टीका-पृथ्वी जलमें मग्न अर्थात् लय होजातीहै जल

अग्निमें लयभावको प्राप्त होताहै और अग्नि वायुमें लय होजाताहै और वायु आकाशमें लीन होजाताहै ॥८५॥

मूलम्-अविद्यायां महाकाशो लीयते परमे पदे ॥ विक्षेपावरणा शक्तिर्दुरन्ता दुःखरूपिणी॥८६॥जडरूपा महामाया रजःसत्त्वतमोगुणा ॥ सा मायावरणाशक्त्यावृताविज्ञानरूपिणी ॥ ८७ ॥

टीका-और आकाश अविद्यामें लयभावको प्राप्त होजाताहै और यह अविद्या मायाभी परमपदको पहुँच जाती है अर्थात् आत्मामें लय होजातीहै, तात्पर्य यह है कि, जो उत्पन्न भया है उसका अवश्य नाश है, ईश्वरकी यह दो शक्ति विक्षेप और आवरण हैं. इनका अंत नहीं है यह महामाया दुःखरूपिणीमें रज,सत्त्व,तम,तीनों गुण हैं समय समयपर इन गुणोंको धारण कर लेतीहै सो माया आवरणशक्ति ज्ञानको आवृत करके अर्थात् छिपाके अज्ञानरूपिणी होजातीहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

मूलम्-दर्शयेज्जगदाकारं तं विक्षेपस्वभावतः॥तमोगुणाधिकाविद्या या सा दुर्गा भवेत्स्वयम्॥८८॥ईश्वरं तदुपहितं चैतन्यं तद-

मूद्भवम्॥सत्त्वाधिका च या विद्या लक्ष्मीः स्याद्दिव्यरूपिणी॥८९॥चैतन्यं तदुपहितं विष्णुर्भवति नान्यथा ॥ रजोगुणाधिका विद्या ज्ञेया सा वै सरस्वती ॥ यश्चित्स्वरूपो भवति ब्रह्मातदुपधारकः ॥९०॥

टीका—और संसारके आकारको देखातीहै यह विक्षेप करना उसका स्वभाव है माया जब तमोगुण धारण करतीहै तब दुर्गारूप होके चैतन्य ईश्वरको उत्पन्न करतीहै और जब सतोगुणको धारण करतीहै तब लक्ष्मी रूप होके चैतन्य जो विष्णु हैं उनको उत्पन्न करतीहै जब रजोगुणको धारण करतीहै तब सरस्वतीरूप होके चैतन्य जो ब्रह्मा हैं उनको उत्पन्न करतीहै अर्थात् सबकी उत्पत्तिका कारण यही जगन्माता महामाया है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

मूलम्—ईशाद्याः सकला देवा दृश्यन्ते परमात्मनि ॥ शरीरादिजडं सर्वं सा विद्या तत्तथा तथा ॥९१॥ एवंरूपेण कल्पन्ते कल्पका विश्वसम्भवम्॥तत्त्वातत्त्वं भवंतीह कल्पनान्येन नोदिता ॥ ९२ ॥

टीका-हमारे आदि सकल देवता उसी एक परमात्मामें देख पड़ते हैं और शरीरआदि सब जड पदार्थ उसी एक विद्या अर्थात् आत्मामें भिन्न भिन्न जान पड़तेहैं इसी तरह बुद्धिमान् लोगोंने संसारकी स्थितिकी कल्पना कीयाहै कि,तत्त्व अतत्त्व दोनों भयाहै अर्थात् आत्मासेही सब सृष्टिकी उत्पत्ति केवल कल्पनामात्र है और कुछ किसीने कहा नहीं है ॥ ११ ॥ १२ ॥

मूलम्-प्रमेयत्वादिरूपेण सर्वं वस्तु प्रकाश्यते॥तथैव वस्तुनास्त्येव भासको वर्तकः परः ॥१३॥ स्वरूपत्वेन रूपेण स्वरूपं वस्तु भाष्यते ॥ विशेषशब्दोपादाने भेदो भवति नान्यथा ॥ १४ ॥

टीका-प्रमेयरूप अर्थात् यावत् वस्तु संसारमें दृश्यमान हैं वह सबके प्रकाशका कारण वही एक आत्मा है उपाधि भेदसे भिन्न भिन्न स्वरूप देखपड़ताहै विशेष करके नामभेदसे भेद है अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय दोनों वही है और कुछ नहीं है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलम्-एकः सत्तापूरितानन्दरूपः पूर्णो व्यापी वर्त्तते नास्ति किञ्चित् ॥ एतज्ज्ञानं

य: करोत्येव नित्यं मुक्तः स स्यान्मृत्युसं-
सारदुःखात् ॥ १५ ॥

टीका-एक सत्तामात्र पूरित आनन्दस्वरूप परि-
पूर्ण व्यापी सर्वदा वर्त्तमानहै और दूसरा कुछ नहीं है
ऐसा ज्ञान जिसकोहै और सर्वदा वह यही मनन कर-
ताहै सो मुक्त है अर्थात् संसारके जन्ममरणआदि
दुखःसे वह रहित है ॥ १५ ॥

मूलम्-यस्यारोपापवादाभ्यां यत्र सर्वे लयं
गताः ॥ स एको वर्तते नान्यत्तच्चित्तेना-
वधार्यते ॥ १६ ॥

टीका-जहां ज्ञानद्वारा संसारके कार्योंका लय
होजाता है अर्थात् उससे अभेद होजाते हैं उसी एक
सर्वदा वर्तमान आत्मामें मनको लय करे अर्थात्
आत्माकाही ध्यान धारण करे ॥ १६ ॥

मूलम्-पितुरन्नमयात्कोशाज्जायते पूर्वकर्म-
णः॥ शरीरं वै जडं दुःखं स्वप्राग्भोगाय
सुन्दरम् ॥ १७ ॥

टीका-पूर्वकर्मके अनुसार प्राणी पिताके अन्न-
मय कोशसे दुःख भोगनेके कारण जड शरीर सुन्दर
भोगरूप उत्पन्न होताहै ॥ १७ ॥

मूलम्-मांसास्थिस्नायुमज्जादिनिर्मितं भोगमन्दिरम् ॥ केवलं दुःखभोगाय नाडी संततिगुंफितम् ॥ ९८ ॥

टीका-मांस अस्थि स्नायु मज्जा आदि नाडियोंसे बँधाहुआ यह भोगमन्दिर अर्थात् शरीर केवल दुःखका कारण है, तात्पर्य यह है कि, ऐसा शरीर जिसके उत्पत्ति स्थितिके स्मरण करनेसे घृणा होतीहै. उसमें व्यर्थ मनुष्य मायामें फँसके मोह और अभिमान करताहै॥९८॥

मूलम्-पारमेष्ठ्यमिदं गात्रं पंचभूतविनिर्मितम् ॥ ब्रह्माण्डसंज्ञकं दुःखसुखभोगाय कल्पितम् ॥ ९९ ॥

टीका-यह शरीर ब्रह्माके द्वारा पंचभूतसे निर्मित ब्रह्मांडसंज्ञक सुख दुःख भोगनेके हेतु कल्पितहै॥९९॥

मूलम्-बिन्दुः शिवो रजः शक्तिरुभयोर्मिलनात्स्वयम् ॥ स्वप्नभूतानि जायन्ते स्वशक्त्या जडरूपया ॥ १०० ॥

टीका--शिवरूप बिन्दु और शक्तिरूप रज इन दोनोंके संबन्धसे ईश्वरकी शक्ति जडरूपा महामाया अपनी प्रभुतासे शरीरोंको उत्पन्न करती है ॥१००॥

मूलम्-तत्पञ्चीकरणात्स्थूलान्यसंख्यानि चराचरम् ॥ ब्रह्मांडस्थानि वस्तूनि यत्र जीवोऽस्तिकर्मभिः ॥ १०१ ॥ तद्भूतपञ्च-कात्सर्वं भोगाय जीवसंज्ञिता ॥ १०२ ॥

टीका-उसी पंचीकरणसे अनेक स्थूल वस्तु इस संसारमें चराचर उत्पन्न होती हैं यह जीवभी अपने कर्मके अनुसार भोग भोगनेके हेतु उसी पांच भूतसे जीवसंज्ञाकरके प्रगट होता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

मूलम्-पूर्वकर्मानुरोधेनकरोमि घटनामहम् ॥ अजडः सर्वभूतान्वै जडस्थित्या भुनक्ति तान् ॥ १०३ ॥

टीका-ईश्वर कहते हैं कि, प्राणीको पूर्व कर्मके अनुसार हम उत्पन्न करतेहैं और सर्व भूतोंसे हम अजड अर्थात् भिन्न और अविनाशी हैं परंतु जड-रूप होके सबको हम खाजाते हैं अर्थात् सबका नाश करतेहैं ॥ १०३ ॥

मूलम्-जडात्स्वकर्मभिर्बद्धो जीवाख्यो विविधो भवेत् ॥ भोगायोत्पद्यते कर्म ब्रह्मांडाख्ये पुनः पुनः॥ जीवश्च लीयते भोगावसाने च स्वकर्मणः ॥ १०४ ॥

टीका-जीव अपने कर्ममें बंधके नाना प्रकारके जड शरीर धारण करता है और अपने कर्मके फल भोगनेके हेतु संसारमें वारंवार उत्पन्न होता है और सब कर्मोंके अवसानमें अर्थात् जब ज्ञानद्वारा सब कर्मोंसे रहित होजाता हैं तब उसी ज्ञानस्वरूप आत्मामें लय होजाताहै ॥ १०४ ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे लयप्रकरणे भाषाटीकायां प्रथमःपटलः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपटलः ।

मूलम्-देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः ॥ सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥ १ ॥ ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ॥ २ ॥

टीका-प्राणीके इस शरीरमें सप्तद्वीपसहित सुमेरुहैं और नदी समुद्रआदि पर्वत और क्षेत्र क्षेत्रपाल ऋषि मुनि और सब नक्षत्र ग्रह पुण्यतीर्थ और पीठ देवता आदि सब इसी शरीरमें वर्तमान हैं ।तात्पर्य यह है कि मनुष्य तीर्थोंमें स्नान दर्शनके हेतु भटकता फिरताहै, परंतु इस शरीरस्थ तीर्थ और देवताको नहीं जानता न

मनको शुद्ध करके उनके जाननेमें प्रयास करताहै १॥२

मूलम्–सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ॥ नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥ ३ ॥

टीका–सृष्टिके स्थिति संहारके कर्ता चन्द्रमा और सूर्य इस शरीरमें भ्रमण करते हैं और आकाश,वायु, अग्नि,जल, पृथ्वी, अर्थात् पांचों तत्त्व सर्वदा शरीरमें वर्तमान रहतेहैं. तात्पर्य यह है कि,सब इसी शरीरमें हैं परंतु विना गुरुकी कृपाके देख नहीं पड़ते ॥३॥

मूलम्–त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ॥ मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते ॥ जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ॥ ४ ॥

टीका–जो त्रैलोक्यमें चराचर वस्तु हैं सो सब इसी शरीरमें मेरुके आश्रय होके सर्वत्र अपने २ व्यवहार को वर्तते हैं जो मनुष्य यह सब जानताहै सो योगी है इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम्–ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः ॥ मेरुशृंगे सुधारश्मिर्बहिरष्टकलायुतः ॥ ५ ॥

टीका-यह शरीर ब्रह्माण्डसंज्ञकहै जिस तरह संसारमें सब देश और सुमेरु पर्वतहै उसी तरह शरीरमें मेरु है उसके ऊपर सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा आठ कलासे स्थितहै ॥ ५ ॥

मूलम्-वर्ततेऽहर्निशं सोऽपि सुधां वर्षत्यधोमुखः ॥ ६ ॥ ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं यथा च वै ॥ इडामार्गेण पुष्ट्यर्थं याति मन्दाकिनीजलम् ॥ पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम् ॥ ७ ॥

टीका-सोई चन्द्रमा रात्रि दिवस अधोमुख होके अमृतकी वर्षा करते हैं वह अमृत सूक्ष्म दो भाग होजाता है सो मन्दाकिनीके जलके समान देहके रक्षार्थ इडा जो वामनाडी है उसके रन्ध्रसे सकल शरीरको पोषण करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

मूलम्-एष पीयूषरश्मिर्हि वामपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ ८ ॥ अपरः शुद्धदुग्धाभो हठात्कर्षति मण्डलात् ॥ रन्ध्रमार्गेण सृष्ट्यर्थं मेरौ संयाति चन्द्रमाः ॥ ९ ॥

टीका-वही सुधाकिरण संयुक्त इडा नाडीकी स्थिति वामभागमें है और शुद्ध दूधके समान मेरुमें चन्द्रमा

प्रसन्नतापूर्वक अपने मण्डलसे इडाके रन्ध्रमार्गसे आयके देहीका पोषण करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

मूलम्-मेरुमूले स्थितः सूर्यः कलाद्वादशसंयुतः ॥ दक्षिणे पथि रश्मिभिर्वहत्यूर्ध्वं प्रजापतिः ॥ १० ॥

टीका-मेरुदण्डके मूलमें अर्थात् नीचे बारह कलासंयुक्त सूर्य स्थित हैं दक्षिणपथ अर्थात् पिङ्गलानाडी द्वारा प्रजापति स्वरूपकी गति ऊपरको है ॥ १० ॥

मूलम्-पीयूषरश्मिनिर्यासं धातूंश्च ग्रसति ध्रुवम् ॥ समीरमण्डले सूर्यो भ्रमते सर्वविग्रहे ॥ ११ ॥

टीका-सूर्य अमृतधातुको अपने किरण शक्तिसे ग्रास करजातेहैं और वायुमण्डलके साथ सब शरीरमें भ्रमण करतेहैं ॥ ११ ॥

मूलम्-एषा सूर्यपरामूर्तिर्निर्वाणं दक्षिणे पथि ॥ वहते लग्नयोगेन सृष्टिसंहारकारकः ॥ १२ ॥

टीका-यह सूर्यकी अपर निर्वाण मूर्ति है अर्थात् पिङ्गलानाडी दक्षिणभागमें स्थितहै सूर्य सृष्टि संहार करता लग्नयोगसे नाडीद्वारा प्रवाह करतेहैं ॥ १२ ॥

मूलम्-सार्धलक्षत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम् ॥ प्रधानभूता नाडयस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥ १३ ॥ सुषुम्णेडा पिंगला च गांधारी हस्तिजिह्विका ॥ कुहूः सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी ॥१४॥ वारुणालम्बुसा चैव विश्वोदरी यशस्विनी ॥ एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः पिङ्गलेडा सुषुम्णिका ॥ १५ ॥

टीका-शरीरमें बहुत नाडी हैं परंतु उनमें प्रधान नाडी साढेतीन लक्षहैं उनमेंसे मुख्य यह चौदह नाडी हैं १ सुषुम्णा२इडा ३ पिङ्गला ४गान्धारी५हस्तिजिह्वा ६ कुहू ७ सरस्वती ८ पूषा ९ शंखिनी १०पयस्विनी ११ वारुणा१२ अलंवुसा१३विश्वोदरी१४यशस्विनी इन चौदहमें भी तीन नाडी मुख्यहैं इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा ॥ १३ ॥ १४ ॥ ५ ॥

मूलम्-तिसृष्वेका सुषुम्णैव मुख्या सा-योगिवल्लभा ॥ अन्यास्तदाश्रयं कृत्वा नाड्यः सन्ति हि देहिनाम् ॥ १६ ॥

टीका-इडा,पिङ्गला, सुषुम्णा इन तीन नाडियोंमें

भी एकही सुषुम्णा मुख्य है इस कारणसे कि, परमपदकी दाताहै योगी लोगोंको हितकारी है अन्य नाडी उसके आश्रय शरीरमें रहती हैं ॥ १६ ॥

मूलम्-नाड्यस्तु ता अधोवक्त्राः पद्मतन्तु-निभाः स्थिताः ॥ पृष्ठवंशं समाश्रित्य सोमसूर्याग्निरूपिणी ॥ १७ ॥

टीका-यह तीनों नाडी अधोवदनाहैं अर्थात् नीचे-मुख कमलतन्तुके सदृश हैं और चन्द्र सूर्य अग्निके समान हैं अर्थात् इडा चन्द्ररूप और पिङ्गला सूर्यरूप और सुषुम्णा अग्निरूप है यह तीनों नाडी मेरुदंडके आश्रय स्थित हैं ॥ १७ ॥

मूलम्-तासां मध्ये गता नाडी चित्रा सा मम वल्लभा ॥ ब्रह्मरन्ध्रञ्च तत्रैव सूक्ष्मा-त्सूक्ष्मतरं शुभम् ॥ १८ ॥

टीका-उन तीनों नाडियोंके मध्यमें जो चित्रा नाडी है वह हमको प्रिय है उसी स्थानमें बहुत सूक्ष्म ब्रह्मरंध्र शोभायमान है ॥ १८ ॥

मूलम्-पञ्चवर्णोज्ज्वला शुद्धा सुषुम्णा मध्यचारिणी ॥ देहस्योपाधिरूपा सा सुषुम्णा मध्यरूपिणी ॥ १९ ॥

टीका—वह चित्रानाडी पंचवर्ण अतिउज्ज्वल शुद्ध है और देहके उपाधिका कारणभी वही सुषुम्णान्तर्गता अर्थात् चित्रा नाडी है. तात्पर्य यह है कि, आत्म स्वरूप वही है ॥ १९ ॥

मूलम्–दिव्यमार्गमिदं प्रोक्तममृतानन्दकारकम् ॥ ध्यानमात्रेण योगींद्रो दुरितौघं विनाशयेत् ॥ २० ॥

टीका—यह मार्ग बहुत श्रेष्ठ अमृतानन्दकारक मुक्तिका दाता हमने कहा है जिसके ध्यानमात्रसे योगी लोगोंके पापका समूह नाश होजाताहै ॥ २० ॥

मूलम्–गुदात्तुद्व्यंगुलादूर्ध्वं मेढ्रात्तु द्व्यंगुलादधः ॥ चतुरंगुलविस्तारमाधारं वर्तते समम् ॥ २१ ॥

टीका—गुदासे दो अंगुल ऊपर और मेढ्रसे दो अंगुल नीचे मध्यमें चार अंगुल विस्तार आधारपद्म है ॥ २१ ॥

मूलम्–तस्मिन्नाधारपद्मे च कर्णिकायां सुशोभना ॥ त्रिकोणा वर्त्तते योनिः सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥ २२ ॥

टीका—उस आधारपद्मके कर्णिकामें अर्थात् डंडीमें

त्रिकोणयोनि है यह योनि सब तंत्रों करके गोपित है अर्थात् इसके प्रकाशकरनेकी आज्ञा किसी शास्त्रमें नहीं है ॥ २२ ॥

मूलम्-तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता ॥ सार्द्धत्रिकरा कुटिला सुषुम्णा मार्गसंस्थिता ॥ २३ ॥

टीका-उसी स्थानमें कुण्डलिनी देवता साढेतीन हाथ कुटिला अर्थात् टेढी जिसकी प्रभा विद्युतके समान है सुषुम्णाके मार्गमें स्थित है ॥ २३ ॥

मूलम्-जगत्संसृष्टिरूपा सा निर्माणे सततोद्यता ॥ वाचामवाच्या वाग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता ॥ २४ ॥

टीका-सोई कुण्डलिनी जगत्के बहुत प्रकारसे उत्साहपूर्वक रचना करनेकी रूप है और वाग्देवी है अर्थात् उसीसे वाक्यका उच्चारण होताहै इस कुण्डलिनी देवीको देवतालोग नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥

मूलम्-इडानाम्नी तु या नाडी वाममार्गे व्यवस्थिता ॥ सुषुम्णायां समाश्लिष्य दक्षनासापुटे गता ॥ २५ ॥

टीका-जो इडा नाम नाडी वामभागमें है वह सु-

षुम्णाको आवृत करती हुई अर्थात् उससे मिलीहुई नासिकाके दक्षिणद्वारको गई है ॥ २५ ॥

मूलम्-पिङ्गला नाम या नाडी दक्षमार्गे व्यवस्थिता ॥ सुषुम्णा सा समाश्लिष्य वामनासापुटे गता ॥ २६ ॥

टीका--दक्षिणमार्गमें जो पिङ्गला नाडी है वह सुषुम्णाके आसरे होके नासिकाके वामद्वारको गई है॥२६॥

मूलम्-इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णां या भवेत्खलु ॥ षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः ॥ २७ ॥

टीका-इडा पिङ्गलाके मध्यमें सुषुम्णा है इस सुषुम्णाके छः स्थानमें छः शक्ति हैं इनके नाम यह हैं डाकिनी, हाकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिनी, शाकिनी, और इन्हीं छः स्थानोंमें छः पद्म हैं उनके नाम यह हैं आधार, स्वाधिष्टान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा यह अपने ज्ञानसे योगी लोग जानते हैं ॥ २७ ॥

मूलम्-पंचस्थानं सुषुम्णाया नामानि स्युर्बहूनि च ॥ प्रयोजनवशात्तानि ज्ञातव्यानीह शास्त्रतः ॥ २८ ॥

टीका-सुषुम्णाके पांच स्थान हैं उनके नाम बहुत हैं प्रयोजनसे शास्त्रकरके जाना जाताहै ॥ २८ ॥

मूलम्-अन्या याऽस्त्यपरा नाडी मूलाधारात्समुत्थिता ॥ रसनामेढ्रनयनं पादांगुष्ठे च श्रोत्रकम् ॥ २९ ॥ कुक्षिकक्षांगुष्ठकर्णं सर्वांगं पायुकुक्षिकम् ॥ लब्ध्वा तां वै निवर्तन्ते यथादेशसमुद्भवाः ॥ ३० ॥

टीका-और अन्य नाडी मूलाधारसे उठीहै और जिह्वा, मेढ्र, नेत्र, पादका अङ्गुष्ठ, कर्ण, कुक्षि, कक्ष, हस्तांगुष्ठ, पायु, उपस्थ, इन सब अङ्गोंमें इनका अन्त भयाहै अर्थात् मूलाधारसे उत्पन्न होके अपने अपने स्थानमें जाके निवृत्त होगई हैं ॥ २९॥ ३०॥

मूलम्-एताभ्य एव नाडीभ्यः शाखोपशाखतः क्रमात् ॥ सार्धलक्षत्रयं जातं यथाभागं व्यवस्थितम् ॥ ३१ ॥ एता भोगवहा नाड्यो वायुसञ्चारदक्षकाः ॥ ओतप्रोताः सुसंव्याप्य तिष्ठन्त्यस्मिन्कलेवरे ॥ ३२ ॥

टीका-इन्हीं नाडियोंमेंसे शाखोपशाख क्रमसे साढेतीनलक्ष नाडी उत्पन्न होके अपने अपने स्थानमें स्थित हैं यह सब भोगवहानाडी वायुके संचारमें

दक्षहैं ओतप्रोत अर्थात् संयोग वियोगसे इस शरीरमें व्याप्त हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मूलम्-सूर्यमण्डलमध्यस्थः कलाद्वादश-संयुतः ॥ वस्तिदेशे ज्वलद्वह्निर्वर्तते चान्न-पाचकः ॥ ३३ ॥ एष वैश्वानरोग्निर्वै मम तेजोंशसम्भवः ॥ करोति विविधं पाकं प्राणिनां देहमास्थितः ॥ ३४ ॥

टीका-द्वादशकलासंयुक्त सूर्यमण्डलके मध्यमें प्रज्वलित अग्नि है सो वस्तिदेशमें अन्नका पाचन करती है वह वैश्वानर अग्नि हमारे तेजसे उत्पन्न है प्राणीके शरीरमें स्थित होकर नाना प्रकारका पाक करती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मूलम्-आयुः प्रदायको वह्निर्बलं पुष्टिं ददाति सः ॥ शरीरपाटवञ्चापि ध्वस्तरोग-समुद्भवः ॥ ३५ ॥

टीका-सो वैश्वानर अग्नि आयु, बल और पुष्टता और शरीरमें कान्तिका देनेवाला है और यावत रोगोंको नाश करनेवाला है ॥ ३५ ॥

मूलम्-तस्माद्वैश्वानराग्निञ्च प्रज्वाल्य वि-

धिवत्सुधीः ॥ तस्मिन्नन्नं हुनेद्योगी प्रत्यहं गुरुशिक्षया ॥ ३६ ॥

टीका--इस वैश्वानर अग्निको गुरुकी शिक्षापूर्वक प्रज्वलित करके नित्य उसमें अन्नका होम करै अर्थात् भोजन करै ॥ ३६ ॥

मूलम्-ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे स्थानानि स्युर्बहूनि च ॥ मयोक्तानि प्रधानानि ज्ञातव्यानीह शास्त्रके ॥ ३७ ॥ नानाप्रकारनामानि स्थानानि विविधानि च ॥ वर्तन्ते विग्रहे तानि कथितुं नैव शक्यते ॥ ३८ ॥

टीका-यह शरीर ब्रह्माण्डसंज्ञक है इसमें बहुत स्थान हैं हमने प्रधान प्रधान स्थान कहे हैं ये शास्त्रसे जाने जाते हैं बहुत प्रकारके स्थान और नाम उन स्थानोंके हैं जो इस शरीरमें वर्तमानहैं उनके वर्णन करनेको हम शक्य नहींहैं अर्थात् बहुत विस्तारहै उसके कहनेमें व्यर्थ परिश्रम है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मूलम्-इत्थं प्रकल्पिते देहे जीवो वसति सर्व्वगः ॥ अनादिवासनामालाऽलंकृतः कर्मशृंखलः ॥ ३९ ॥

टीका-इसी तरह शरीर कल्पित है और जीव पूर्व

वासनारूपी बेडीमें फँसके मालाके तरह घूमा करता है ॥ ३९ ॥

मूलम्-नानाविधगुणोपेतः सर्वव्यापारकारकः ॥ पूर्वार्जितानि कर्माणि भुनक्ति विविधानि च ॥ ४० ॥

टीका-सोई जीव नानाप्रकारके गुण ग्रहण करता और संसारमें बहुत प्रकारके व्यापार करताहै यह सब पूर्वार्जित शुभाशुभ कर्मके फल भोगताहै ॥ ४० ॥

मूलम्-यद्यत्संदृश्यते लोके सर्वं तत्कर्मसम्भवम् ॥ सर्वः कर्मानुसारेण जन्तुर्भोगान्भुनक्ति वै ॥ ४१ ॥

टीका-जो जो शुभाशुभ कर्म संसारमें देखपडताहै वह सबका आदिकारण कर्मही है प्राणीमात्र अपने कर्मके अनुसार भोग भोगता है ॥ ४१ ॥

मूलम्-ये ये कामादयो दोषाः सुखदुःखप्रदायकाः ॥ ते ते सर्वे प्रवर्तन्ते जीवकर्मानुसारतः ॥ ४२ ॥

टीका-जो जो काम क्रोध आदिसे सुख दुःख होताहै सो जब जीवके कर्महीके अनुसार वर्तताहै ॥ ४२ ॥

मूलम्-पुण्योपरक्तचैतन्ये प्राणान्प्रीणाति केवलम् ॥ बाह्ये पुण्यमयं प्राप्य भोज्यवस्तु स्वयम्भवेत् ॥ ४३ ॥

टीका-पुण्य कर्मके अनुष्ठान करनेसे प्राणीको सुख होताहै और बाह्य वस्तु श्रेष्ठ भोजनआदि नानाप्रकारकी वस्तु आपही मिल जातीहैं ॥ ४३ ॥

मूलम्-ततः कर्मबलात्पुंसः सुखं वा दुःखमेव च ॥ पापोपरक्तचैतन्यं नैव तिष्ठति निश्चितम् ॥४४॥ न तद्भिन्नो भवेत्सोऽपि तद्भिन्नो न तु किञ्चन ॥ मायोपहितचैतन्यात्सर्वं वस्तु प्रजायते ॥ ४५ ॥

टीका-यह प्राणी अपने कर्मके बलसे सुख वा दुःख भोगताहै, जीव जब पापमें आसक्त होताहै तब दुःख भोगताहै, फिर उसको सुखलाभ नहीं होता. जीव अपने कर्मके अनुसार सुख वा दुःख भोगताहै इसमें भिन्नता नहीं है अर्थात् कर्ता भोक्तामें भेद नहीं चैतन्य आत्मा जब मायोपहित होताहै तब सब वस्तु उत्पन्न होतीहैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

मूलम्-यथाकालेपि भोगाय जन्तूनां विवि

धोद्भवः ॥ यथा दोषवशाच्छुक्तौ रजतारोपणं भवेत् ॥ तथा स्वकर्मदोषाद्वै ब्रह्मण्यारोप्यते जगत् ॥ ४६ ॥

टीका-जैसा काल भोगके हेतु निश्चय रहता है उसमें प्राणी नानाप्रकारसे भोग भोगनेके लिये उत्पन्न होताहै जैसे नेत्रके विकारके कारणसे सीपीमें चाँदीका आरोप होताहै वैसेही अपने कर्मके दोषसे प्राणी ब्रह्ममें मिथ्या जगत्का आरोप करताहै ॥ ४६ ॥

मूलम्-सवासनाभ्रमोत्पन्नोन्मूलनातिसमर्थनम् ॥ उत्पन्नश्चेदीदृशं स्याज्ज्ञानं मोक्षप्रसाधनम् ॥ ४७ ॥

टीका वासनासे भ्रम उत्पन्न होताहै जबतक वासनाकी जड नहीं जाती तबतक कदापि भ्रम दूर नहीं होता इसी तरह जब ज्ञान उत्पन्न होताहै तब कुछ नहीं रह जाता इस हेतुसे ज्ञानही मोक्षका साधन है ॥ ४७ ॥

मूलम्-साक्षाद्वैशेषदृष्टिस्तु साक्षात्कारिणि विभ्रमे ॥ करणं नान्यथा युक्त्या सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ४८ ॥

टीका-विशेष करके दृष्टीसे साक्षात् जो देखपड-

ताहै वही साक्षात् भ्रमका कारणहै अर्थात् इसी साक्षा-
त्में मनुष्य फँसाहै मायाके आवरणसे बुद्धि आगे
नहीं जाती और दूसरा कारण कुछ नहीं है यह हम
सत्य कहते हैं ॥ ४८ ॥

**मूलम्–साक्षात्कारिभ्रमे साक्षात्साक्षात्का-
रिणि नाशयेत् ॥ सो हि नास्तीति
संसारे भ्रमो नैव निवर्तते ॥ ४९ ॥**

टीका–यह साक्षात् घटपट आदिका भ्रम ब्रह्मके
प्रत्यक्ष होनेसे नाश होताहै विना आत्माके प्रत्यक्ष भये
ब्रह्म संसारमें नहीं है यह भ्रम निवृत्त नहीं होता ॥ ४९ ॥

**मूलम्–मिथ्याज्ञाननिवृत्तिस्तु विशेषदर्शना-
द्भवेत् ॥ अन्यथा न निवृत्तिः स्याद्दृश्य-
ते रजतभ्रमः ॥ ५० ॥**

टीका–यह मिथ्या संसारका ज्ञान आत्माका विशे-
ष दर्शन होनेसे निवृत्त होता है और किसीप्रकार इस
अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती. जैसे सीपीमें चाँदीका
भ्रम विना सीपीके निश्चय भये दूर नहीं होता ॥ ५० ॥

**मूलम्–यावन्नोत्पद्यते ज्ञानं साक्षात्कारे नि-
रञ्जने ॥ तावत्सर्वाणि भूतानि दृश्यन्ते
विविधानि च ॥ ५१ ॥**

टीका-जबतक आत्माका साक्षात्कार ज्ञान नहीं होता तबतक सब प्राणी संसार आदि नाना प्रकारके देखपडते हैं ॥ ५१ ॥

मूलम्-यदा कर्मार्जितं देहं निर्वाणे साधनं भवेत् ॥ तदा शरीरवहनं सफलं स्यान्न चान्यथा ॥ ५२ ॥

टीका-जो यह कर्मार्जित शरीर है इससे निर्वाण अर्थात् आत्मज्ञानका साधन होय तब इसका जन्म और स्थिति सुफल है नहीं तो व्यर्थ है. तात्पर्य यह है कि, जिस मनुष्यको आत्मज्ञान नहीं हुआ या इस विषयका उसने साधन नहीं किया उसका जन्म केवल माताके दुःख देने और पृथ्वीपर भारके हेतु भया॥५२॥

मूलम्-यादृशी वासना मूला वर्त्तते जीवसंगिनी॥ तादृशं वहते जन्तुः कृत्याकृत्यविधौ भ्रमम्॥ ५३ ॥

टीका-जैसी वासना जीवके संग रहती है वैसेही प्राणी शुभाशुभ कर्म भ्रमके वश होके करताहै और उसी वासनासे उत्पन्न और नाश होता रहताहै ॥ ५३॥

मूलम्-संसारसागरं तर्त्तुं यदीच्छेद्योगसाधकः॥ कृत्वा वर्णाश्रमं कर्म फलवर्जं तदाचरेत् ॥ ५४ ॥

टीका-योगसाधक यदि संसारसे तरनेकी इच्छा करे तो यावत् वर्णाश्रमका कर्म फलरहित करना उचित है ॥ ५४ ॥

मूलम्-विषयासक्तपुरुषा विषयेषु सुखेप्सवः ॥ वाचाभिरुद्धनिर्वाणा वर्तन्ते पापकर्मणि ॥ ५५ ॥

टीका-विषयासक्त पुरुष सुख और विषयकी इच्छामें सर्वदा रहते हैं और पापकर्ममें ऐसे तत्पर रहते हैं कि, वाक्यभी उनका परमार्थ विषयमें रुद्ध रहता है अर्थात् मोक्षका साधन तो बहुत दूर है परन्तु परमार्थकी चर्चासेभी उनको ज्वर चढता है ॥५५ ॥

मूलम्-आत्मानमात्मना पश्यन्न किञ्चिदिह पश्यति ॥ तदा कर्मपरित्यागे न दोषोऽस्ति मतं मम ॥ ५६ ॥

टीका-जब ज्ञानी आत्मासे आत्माको देखे और सब वस्तुका अभाव जानपडे तब कर्मको त्याग देनेमें कुछ दोष नहीं है यह हमारा मतहै ऐसा श्रीशिवजी जगन्माता पार्वतीजीसे कहते हैं ॥ ५६ ॥

मूलम्-कामादयो विलीयन्ते ज्ञानादेव न चान्यथा ॥ अभावे सर्वतत्त्वानां स्वयं तत्त्वं प्रकाशते ॥५७॥

टीका-ज्ञानमें काम क्रोधादि सकल पदार्थ लय होजाते हैं इसमें अन्यथा नहीं है, जब स्वयं तत्त्व अर्थात् आत्मज्ञान प्रकाश होताहै तब सब तत्त्वोंका अभाव होजाताहै ॥ ५७ ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगप्रकथने तत्त्वज्ञानोपदेशो नाम द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

अथ तृतीयपटलः।

मूलम्-हृद्यस्ति पङ्कजं दिव्यं दिव्यलिङ्गेन भूषितम्॥कादिठान्ताक्षरोपेतं द्वादशार्ण-विभूषितम् ॥ १ ॥

टीका-प्राणीके हृदयस्थानमें एक पद्म सुन्दर दिव्यलिङ्गसे शोभायमानहै यह पद्म क-से-ठ-तक द्वादश वर्णकरके शोभित है अर्थात् क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ ॥ १ ॥

मूलम्-प्राणो वसति तत्रैव वासनाभिरलंकृतः॥अनादिकर्मसंश्लिष्टः प्राप्याहङ्कार-संयुतः॥ २॥

टीका-उसी पद्ममें प्राणकी स्थितिहै और अनादि कर्म अहंकारसंयुक्त वासनासे अलंकृत है ॥ २॥

मूलम्–प्राणस्य वृत्तिभेदेन नामानि विविधानि च ॥ वर्तन्ते तानि सर्वाणि कथितुं नैव शक्यते ॥ ३ ॥

टीका–प्राणके वृत्तिभेदसे जो इस शरीरमें वायु वर्तमान हैं उनके बहुत प्रकारके नाम हैं जिनके वर्णन करनेको हम शक्य नहीं हैं अर्थात् यहां उनके वर्णनका प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम्–प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानश्च पञ्चमः ॥ नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ४ ॥ दशनामानि मुख्यानि मयोक्तानीह शास्त्रके ॥ कुर्वन्ति तेऽत्र कार्याणि प्रेरितानि स्वकर्मभिः ॥ ५ ॥

टीका–प्राणके मुख्य भेदोंका नाम प्राण, अपान-समान, उदान, पांचवां व्यान और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय,यह दश वायु मुख्य हैं हम शास्त्रप्रमाणसे कहते हैं शरीरमें यह वायु अपने कर्मसे प्रेरित होके कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलम्–अत्रापि वायवः पञ्च मुख्याः स्युर्दशतः पुनः ॥ तत्रापि श्रेष्ठकर्त्तारौ प्राणापानौ मयोदितौ ॥ ६ ॥

टीका–वह दश वायुमें पांच मुख्य हैं फिर उनमेंभी निश्चय करके श्रेष्ठ करता श्री महादेवजी कहते हैं कि, हमने प्राण और अपानको कहाहै ॥ ६ ॥

मूलम्–हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ॥ उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ७ ॥ नागादिवायवः पञ्च ते कुर्वन्ति च विग्रहे ॥ उद्गारोन्मीलनं क्षुत्तृड्जृम्भा हिक्का च पञ्चमः ॥ ८ ॥

टीका–हृदयस्थानमें प्राणकी स्थिति है और गुदामें अपान और नाभिमण्डलमें समान जौर कण्ठमें उदान और व्यान सब शरीरमें व्याप्त है और नाग आदि जो पांच वायु हैं वह शरीरमें डकार, हिचकी जँभाई, क्षुधा, पीपासा, उन्मीलन अर्थात् निद्रासे जाग्रत् होनेके समय जो नेत्रके खुलनेका हेतु है यह सब कार्य करतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

मूलम्–अनेन विधिना यो वै ब्रह्माण्डं वेत्ति विग्रहम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ९ ॥

टीका–इस विधानसे जो पहिले कहा है शरीरको जो मनुष्य ब्रह्माण्ड जानताहै वह सर्व पापोंसे मुक्त होके

परमगतिको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्ष होताहै ॥ ९ ॥

मूलम्-अधुना कथयिष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ॥ यज्ज्ञात्वा नावसीदन्ति योगिनो योगसाधने ॥ १० ॥

टीका-अब जो हम कहते हैं इस विधिसे बहुत शीघ्र योग सिद्ध होता है और इसके जान लेनेसे योगीको योगसाधनमें कष्ट नहीं होता ॥ १० ॥

मूलम् भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा॥ अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा ॥ ११ ॥

टीका-जो विद्या गुरुके मुखसे सुनी वा जानी जाती है वह वीर्यवती होतीहै और अन्य प्रकारसे विद्या फलहीन निर्वीर्या और अतिदुःखकी देनेवाली होती है. तात्पर्य यह है कि, योगविद्या वा अन्यविद्या भलेप्रकार गुरुसे जानकरके करना उचित है जो लोक पुस्तकसे वा किसीको करते देखते योगादिक क्रिया आरम्भ करदेते हैं उनका कल्याण नहीं होता यथार्थ न जाननेसे कष्टही होताहै ॥ ११ ॥

मूलम्-गुरुं सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते ॥ अवलम्बेन विद्यायास्तस्याः फलमवाप्नुयुः ॥ १२ ॥

टीका-गुरुको सब तरहसे प्रसन्न करके जो विद्या मिलतीहै उस विद्याका फल शीघ्र होताहै अर्थात् थोडे कालमें सिद्ध होजातीहै ॥ १२ ॥

मूलम्-गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः॥कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वैः प्रसेव्यते॥१३॥ गुरुप्रसादतः सर्वं लभ्यते शुभमात्मनः॥ तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ॥ १४॥ प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा स्पृष्ट्वा सव्येन पाणिना॥ अष्टांगेन नमस्कुर्याद्गुरुपादसरोरुहम्॥१५॥

टीका-गुरु पिता और गुरु माता और गुरु देवता है इसमें संशय नहीं है इस हेतुसे गुरुको कर्मसे मनसे वाक्यसे सब प्रकारसे सेवा करना उचितहै, गुरुके प्रसादसे आत्माका सब शुभ होजाता है, इसलिये गुरुकी नित्य सेवा करना उचित है.दूसरी तरह शुभ नहीं है गुरुको तीन प्रदक्षिणा करके दक्षिण हाथसे स्पर्श करके गुरुके चरणकमलमें साष्टांग नमस्कार करना उचित है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूलम्-श्रद्धयात्मवतां पुंसां सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ अन्येषाञ्च न सिद्धिः स्यात्तस्माद्यत्नेन साधयेत् ॥ १६ ॥

टीका-जिस पुरुषको श्रद्धा है उसको निश्चय करके विद्या सिद्ध होती है दूसरेको नहीं होती. इस हेतुसे साधकको उचित है कि यत्नसे साधन करे ॥ १६ ॥

मूलम्-न भवेत्संगयुक्तानां तथाऽविश्वासिनामपि ॥ गुरुपूजाविहीनानां तथा च बहुसंगिनाम् ॥ १७ ॥ मिथ्यावादरतानां च तथा निष्ठुरभाषिणाम् ॥ गुरुसन्तोषहीनानां न सिद्धिः स्यात्कदाचन ॥ १८ ॥

टीका-जिस पुरुषका किसी व्यवहारी मनुष्यसे अतिसङ्ग है उसको योगविद्या सिद्ध नहीं होती ऐसेही अविश्वासी और जो गुरुपूजासे हीन हैं और जिनका बहुत लोगोंसे संग है और वह लोग जो झूठ और कठोर वचन बोला करते हैं और वह लोग जो गुरुको प्रसन्न नहीं करते इन लोगोंको कदापि सिद्धि नहीं होती ॥ १७ ॥ १८ ॥

मूलम्-फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम् ॥ द्वितीयं श्रद्धया युक्तं तृतीयं गुरुपूजनम् ॥ १९ ॥ चतुर्थं समताभावं पञ्चमेन्द्रियनिग्रहम् ॥ षष्ठं च प्रमिताहारं सप्तमं नैव विद्यते ॥ २० ॥

टीका-योगसिद्धि होनेका प्रथम लक्षण यह हैं कि, उसके सिद्धिमें विश्वास हो दूसरे श्रद्धायुक्त तीसरे गुरुपूजारत हो चौथे प्राणीमात्रमें समताभाव रक्खे पांचवें इन्द्रियोंका निग्रह रहे छठवें परिमित भोजनकरै यह छः लक्षण योगसिद्धिके हैं और सातवाँ नहीं है॥१९॥२०॥

मूलम्-योगोपदेशं संप्राप्य लब्ध्वा योगविदं गुरुम् ॥ गुरूपदिष्टविधिना धिया निश्चित्य साधयेत् ॥ २१ ॥

टीका-योगवेत्ता गुरुसे योग उपदेश लेके जिस विधिसे गुरु उपदेश करे उस विधिसे बुद्धि निश्चय करके साधन करे ॥ २१ ॥

मूलम्-सुशोभने मठे योगी पद्मासनसमन्वितः॥आसनोपरि संविश्य पवनाभ्यासमाचरेत्॥ २२॥

टीका-उपद्रवरहित सुन्दर स्वच्छ और उसका सूक्ष्म रन्ध्र होय उस मठमें पद्मासनसंयुक्त आसनपर बैठके योगी पवनका अभ्यास करें ॥ २२ ॥

मूलम्-समकायः प्राञ्जलिश्च प्रणम्य च गुरून् सुधीः॥दक्षे वामे च विघ्नेशं क्षेत्रपालांबिकां पुनः ॥ २३ ॥

टीका–समकायः अर्थात् सीधा शरीर करके हाथ जोडके गुरुको प्रणाम करे और दक्षिण वामभागमें गणेशजीको प्रणाम करे और क्षेत्रपाल और जगन्माता देवीको प्रणाम करना उचित है ॥ २३ ॥

मूलम्–ततश्च दक्षांगुष्ठेन निरुद्ध्य पिंगलां सुधीः ॥ इडया पूरयेद्वायुं यथाशक्त्या तु कुम्भयेत् ॥ २४ ॥ ततस्त्यक्त्वा पिंगलया शनैरेव न वेगतः ॥ पुनः पिंगलयाऽऽपूर्य यथाशक्त्या तु कुम्भयेत्॥२५॥इडया रेचयेद्वायुं न वेगेन शनैःशनैः॥इदं योगविधानेन कुर्याद्विंशतिकुम्भकान् ॥ सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः प्रत्यहं विगतालसः ॥ २६॥

टीका–इसके पश्चात् दहिने हाथके अंगुष्ठसे पिंगलाको रोककरके इडासे वायुपूरक करे अर्थात् ग्राह्य करे और यथाशक्ति वायुको रोके फिर पिंगलासे शनैः शनैः रेचक अर्थात् वायुको बाहरकरे इसी प्रकार फिर पिंगलासे पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करे फिर इडासे धीरे धीरे रेचक करे वेगसे कदापि न करे इस योगविधानसे वीस कुम्भक करे और सर्वद्वन्द्वसे रहित होजाय अर्थात् एकाकार वृत्ति रक्खे और नित्य आलस्यको त्याग करके अभ्यास करे॥ २४ ॥२५॥२६॥

मूलम्-प्रातःकाले च मध्याह्ने सूर्यास्ते चार्द्धरात्रके ॥ कुर्यादेवं चतुर्वारं कालेष्वेतेषु कुम्भकान् ॥ २७ ॥

टीका-पूर्वोक्त विधिसे प्रातःकालमें और मध्याह्नमें और सायंकालमें और अर्द्धरात्रिमें इसीतरह चार बार नित्य कुम्भक करना उचित है ॥ २७ ॥

मूलम्-इत्थं मासत्रयं कुर्यादनालस्यो दिने दिने ॥ ततो नाडीविशुद्धिः स्यादविलम्बेन निश्चितम् ॥ २८ ॥

टीका-इसीप्रकार आलस्यको छोडकरके तीन मास नित्यकरे तो उस पुरुषकी नाडी बहुत शीघ्र शुद्ध होजाय यह निश्चय है ॥ २८ ॥

मूलम्-यदा तु नाडीशुद्धिः स्याद्योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ तदा विध्वस्तदोषश्च भवेदारम्भसम्भवः ॥ २९ ॥

टीका-तत्त्वदर्शी योगीकी जब नाडी शुद्ध होगी तब सर्व दोषका नाश होगा और आरम्भका सम्भव होगा ॥ २९ ॥

मूलम्-चिह्नानि योगिनो देहे दृश्यन्ते नाडिशुद्धितः ॥ कथ्यन्ते तु समस्तान्यङ्गानि संक्षेपतो मया ॥ ३० ॥

टीका-नाडी शुद्ध होनेपर जो योगीके शरीरमें चिह्न देखपडतेहैं उन सबको हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं ॥ ३० ॥

मूलम्-समकायः सुगन्धिश्च सुकान्तिः स्वरसाधकः॥३१॥आरम्भघटकश्चैव यथा परिचयस्तदा ॥ निष्पत्तिः सर्वयोगेषु योगावस्था भवन्ति ताः ॥ ३२ ॥

टीका-जब योगीकी नाडी शुद्ध होगी तब समकाय होजायगा अर्थात् न स्थूल न कृश न वक्र रहेगा और शरीरमें सुगंधिसंयुक्त अच्छी कान्ति अर्थात् तेज रहेगा और वायुस्वरका साधन होजायगा और आरम्भका लक्षण जान पडेगा और सब योगका ज्ञान होजायगा इसको योगावस्था कहते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मूलम्-आरम्भः कथितोऽस्माभिरधुना वायुसिद्धये ॥ अपरः कथ्यते पश्चात्सर्वदुःखौघनाशनः ॥ ३३ ॥

टीका-अभी जो हमने कहा है सो प्राणवायु सिद्ध होनेके आरम्भमें यह चिह्न होता है और इसके पीछे जो सर्व दुःखका नाश होता है सो कहते हैं ॥ ३३ ॥

मूलम्-प्रौढवह्निः सुभोगी च सुखीसर्वाङ्गसु-

न्दरः ॥ संपूर्णहृदयो योगी सर्वोत्साहव-
लान्वितः ॥ जायते योगिनोऽवश्यमेत-
त्सर्वं कलेवरे ॥ ३४ ॥

टीका—साधकके शरीरमें जठराग्नि विशेष प्रज्वलित होगी और सर्व अङ्ग सुन्दर सुखपूर्वक सुन्दर भोजन करेगा और बलसंयुक्त सर्व उत्साहसे हृदय योगीका प्रसन्न रहेगा इतने गुण योगीकेशरीरमें अवश्य होंगे ३४

मूलम्-अथ वर्ज्यं प्रवक्ष्यामि योगविघ्नकरं
परम् ॥ येन संसारदुःखाब्धिं तीर्त्वा या-
स्यन्ति योगिनः ॥ ३५ ॥

टीका—अब जो योगमें विघ्न हैं उनको हम कहते हैं जिनको त्यागके यह संसाररूपी जो दुःखका समुद्र है योगी उसके पार होजाताहै ॥ ३५ ॥

मूलम्-आम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्ष-
पं कटुम् ॥ बहुलं भ्रमणं प्रातः स्नानं तैल-
विदाहकम् ॥ ३६ ॥ स्तेयं हिंसां जनद्वेषञ्चा-
हङ्कारमनार्जवम् ॥ उपवासमसत्यञ्च मोह-
ञ्च प्राणिपीडनम् ॥ ३७ ॥ स्त्रीसङ्गमग्निसेवां
च बह्वालापंप्रियाप्रियम् ॥ अतीव भोजनं
योगी त्यजेदेतानि निश्चितम् ॥ ३८ ॥

टीका--खट्टा रूखा तीक्ष्ण लोन सरसो कडुआ बहुत भ्रमण करना प्रातःकाल स्नान शरीरमें तेल मर्दन करना ॥ ३६ ॥ स्वर्णआदिककी चोरी हिंसा मनुष्यसे द्वेष व अहंकार अनार्जव अर्थात् मनुष्यसे प्रेम न रखना, उपवास झूठ, ममता, प्राणीको पीडा देना ॥ ३७ ॥ स्त्रीका सङ्ग, अग्निसेवन, प्रिय, अप्रिय, बहुत बोलना बहुत भोजन करना योगीको उचित है कि, यह सब अवश्य त्याग दे ॥ ३८ ॥

मूलम्-उपायं च प्रवक्ष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ॥ गोपनीयं साधकानां येन सिद्धिर्भवेत्खलु ॥ ३९ ॥

टीका-अब हम बहुत शीघ्र योग सिद्ध होनेका उपाय कहते हैं इसको गोप्य रखनेसे साधकको योग निश्चय सिद्ध होजायगा ॥ ३९ ॥

मूलम्-घृतं क्षीरं च मिष्टान्नं ताम्बूलं चूर्णवर्जितम् ॥ कर्पूरं निष्ठुरं मिष्टं सुमठं सूक्ष्मवस्त्रकम् ॥ ४० ॥ सिद्धान्तश्रवणं नित्यं वैराग्यगृहसेवनम् ॥ नामसङ्कीर्तनं विष्णोः सुनादश्रवणं परम् ॥ ४१ ॥ धृतिः क्षमा तपः शौचं ह्रीर्मतिर्गुरुसेवनम् ॥ सदैतानि परं योगी नियमेन समाचरेत् ॥ ४२ ॥

टीका—घृत दूध मधुर पदार्थ ताम्बूल कर्पूरवासित चूर्णरहित, कठोर शब्दरहित मधुर बोलना, सुन्दर सूक्ष्मरन्ध्रके स्थानमें रहना, सूक्ष्म वस्त्र अर्थात् महीन और थोडा वस्त्र धारण करे नित्य सिद्धांत अर्थात् वेदान्त श्रवण करे और वैराग्यसे गृहमें रहे ईश्वरका स्मरण करे अच्छा शब्द श्रवण करे धैर्य क्षमा तप शौच लज्जा गुरुकी सेवा योगी सदैव इसप्रकार नियमसंयुक्त रहे तो कल्याण होगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

मूलम्—अनिलेऽर्कप्रवेशो च भोक्तव्यं योगिभिः सदा ॥ वायौ प्रविष्टे शशिनि शयनं साधकोत्तमैः ॥ ४३ ॥

टीका—जब सूर्यनाडी अर्थात् पिंगलानाडीका प्रवाह रहे तब योगी सदैव भोजन करे और जब चन्द्र अर्थात् इडानाडीसे वायुका प्रवाह रहे तब साधकके प्रति शयन करना उचित है ॥ ४३ ॥

मूलम्—सद्यो भुक्तेऽपि क्षुधिते नाभ्यासः क्रियते बुधैः ॥ अभ्यासकाले प्रथमं कुर्यात्क्षीराज्यभोजनम् ॥ ४४ ॥

टीका—भोजन करके तुरंत उसी समय अथवा जब क्षुधित होय तब साधक कदापि अभ्यास न करे और अभ्यास कालमें प्रथम दूध घृत भोजन करे ॥ ४४ ॥

मूलम्--ततोऽभ्यासे स्थिरीभूते न तादृङ्नियमग्रहः ॥ ४५ ॥ अभ्यासिना विभोक्तव्यं स्तोकं स्तोकमनेकधा ॥ पूर्वोक्तकाले कुर्यात्तु कुम्भकान्प्रतिवासरे ॥ ४६ ॥

टीका--जब अभ्यास स्थिर होजाय तब पूर्वोक्त नियमका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ४५ ॥ और अभ्यासीको उचितहै कि, थोडा थोडा कईबार भोजनकरे और जिस प्रकार पहिले कहा है उसीतरह नित्य कुम्भककरे ॥ ४६ ॥

मूलम्--ततो यथेष्टा शक्तिः स्याद्योगिनो वायुधारणे ॥ यथेष्टं धारणाद्वायोः कुम्भकः सिद्ध्यति ध्रुवम् ॥ केवले कुम्भके सिद्धे किं न स्यादिह योगिनः ॥ ४७ ॥

टीका--योगीको वायु धारण करनेकी शक्ति इच्छाके अनुसार होजायगी. जब इच्छानुसार धारणशक्ति होजायगी तब कुंभक निश्चय सिद्ध होगा और केवल कुम्भक सिद्ध होनेसे योगी क्या नहीं करसकता अर्थात् सब सिद्ध करसकता है ॥ ४७ ॥

मूलम्--स्वेदः संजायते देहे योगिनः प्रथमोद्यमे ॥ ४८ ॥ यदा संजायते स्वेदो मर्दनं

कारयेत्सुधीः ॥ अन्यथा विग्रहे धातुर्नष्टो भवति योगिनः ॥ ४९ ॥

टीका–योगीके शरीरसें प्रथम स्वेद अर्थात् पसीना उत्पन्न होता है जब स्वेद उत्पन्न होय तो उसको शरीरमें मर्दन करे अन्यथा अर्थात मर्दन न करनेसे योगीके शरीरका धातु नष्ट होजाता है ॥४८॥ ४९॥

मूलम्–द्वितीये हि भवेत्कम्पो दार्दुरी मध्यमे मता ॥ ततोऽधिकतराभ्यासाद्गगनेचरसाधकः ॥ ५० ॥

टीका–दूसरे भूमिकामें कंप होताहै तीसरेमें दार्दुरीवृत्ति होती है अर्थात् आसन उठता है फिर भूमिपर आयजाता है उससे अधिक अभ्यास होनेसे योगी गगनमें स्वेच्छाचारी होजाताहै॥५० ॥

मूलम्–योगी पद्मासनस्थोऽपि भुवमुत्सृज्य वर्तते ॥ वायुसिद्धिस्तदा ज्ञेया संसारध्वान्तनाशिनी ॥ ५१ ॥

टीका–योगी पद्मासनस्थ होके पृथ्वीको त्यागके आकाशमें स्थिर रहे तब जाने कि, संसारके अन्धकार नाश करनेवाली वायु सिद्धहोगई ॥ ५१ ॥

मूलम्–तावत्कालं प्रकुर्वीत योगोक्तनियम-

ग्रहम् ॥ अल्पनिद्रा पुरीषं च स्तोकं मूत्रं च जायते ॥ ५२ ॥

टीका–उस कालतक योगके हेतु पूर्वोक्त नियम करना उचित है जबतक वायु न सिद्ध होय और योगीको थोड़ी निद्रा और थोड़ा मलमूत्र होता है ॥ ५२ ॥

मूलम्–अरोगित्वमदीनत्वं योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ स्वेदो लाला कृमिश्चैव सर्वथैव न जायते ॥ ५३ ॥ कफपित्तानिलाश्चैव साधकस्य कलेवरे ॥ तस्मिन्काले साधकस्य भोज्येष्वनियमग्रहः ॥ ५४ ॥

टीका–तत्त्वदर्शी योगीको कायिक वा मानसिक व्यथा उत्पन्न नहीं होती और स्वेद लाला कृमिआदि उत्पन्न नहीं होते और साधकके शरीरमें कफ पित्त वातका दोषभी नहीं होता पूर्वोक्त कालतक साधक भोजन आदिका नियम करे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

मूलम्–अत्यल्पं बहुधा भुक्त्वा योगी न व्यथते हि सः ॥ अथाभ्यासवशाद्योगी भूचरीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ यथा दर्दुरजन्तूनां गतिः स्यात्पाणिताडनात् ॥ ५५ ॥

टीका--योगीको बहुत थोड़ा या विशेष भोजन क-

रनेसे कष्ट न होगा और योगीको अभ्याससे भूचरी सिद्धि होजायगी जैसे दर्दुरजन्तु पाणि ताडन करनेसे पृथ्वीपर उड्डान करताहै उसीप्रकार योगीभी पृथ्वीपर उड्डान करता है ॥ ५५ ॥

मूलम्-सन्त्यत्र बहवो विघ्ना दारुणा दुर्निवारणाः ॥ तथापि साधयेद्योगी प्राणैः कंठगतैरपि ॥ ५६ ॥

टीका-इस योगसाधनमें बहुत दारुण विघ्न होते हैं जिसका निवारण बहुत कठिन है. परन्तु साधकको उचित है कि, यदि कंठगतभी प्राण होजाँय तोभी साधन न छोड़े ॥ ५६ ॥

मूलम्-ततो रहस्युपाविष्टः साधकः संयतेन्द्रियः ॥ प्रणवं प्रजपेद्दीर्घं विघ्नानां नाशहेतवे ॥ ५७ ॥

टीका-साधकको उचित है कि, विघ्नोंके नाशके हेतु इन्द्रियोंके संयममें अर्थात् उनके कार्यको रोकके विधिपूर्वक एकान्तमें बैठके दीर्घमात्रासे अर्थात् स्पष्ट अक्षरके उच्चारणसे प्रणवका जप करे ॥ ५७ ॥

मूलम्-पूर्वार्जितानि कर्माणि प्राणायामेन निश्चितम् ॥ नाशयेत्साधको धीमानिहलोकोद्भवानि च ॥ ५८ ॥

टीका-पूर्वार्जित कर्म और जो इस जन्ममें किया है यह दोनोंके फलको बुद्धिमान् साधक प्राणायामसे निश्चय है कि, नाश करदेता है ॥ ५८ ॥

मूलम्-पूर्वार्जितानि पापानि पुण्यानि विविधानि च ॥ नाशयेत्षोडशप्राणायामेन योगिपुंगवः ॥ ५९ ॥

टीका-श्रेष्ठयोगी पूर्वार्जित नानाप्रकारका पाप और पुण्य केवल सोलह प्राणायामसे नाश करदेताहै ॥ ५९ ॥

मूलम्-पापतूलचयानाहोप्रलयेत्प्रलयाग्निना ॥ ततः पापविनिर्मुक्तः पश्चात्पुण्यानि नाशयेत् ॥ ६० ॥

टीका-साधक पाप राशिको तूलके समान प्राणायामरूपी अग्निसे प्रलय करदेताहै अर्थात् जलादेताहै इसप्रकारसे मुक्तहोके पश्चात् पुण्यकोभी उसी अग्निमें नाश करदेताहै ॥ ६० ॥

मूलम्-प्राणायामेन योगीन्द्रो लब्ध्वैश्वर्याष्टकानि वै ॥ पापपुण्योदधिं तीर्त्वा त्रैलोक्यचरतामियात् ॥ ६१ ॥

टीका-योगी प्राणायामके प्रभावसे आठ ऐश्वर्य

जिसको अष्टसिद्धि कहते हैं अर्थात् अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता और वशिता, प्राप्त करता है अब इन आठों सिद्धिके लक्षण कहते हैं योगीका शरीर इच्छामात्रसे परमाणुवत् होजाय उसको अणिमा कहते हैं और योगी इच्छापूर्वक प्रकृतिको अपनेमें करके आकाशवत् स्थूल होजाय उसको महिमा कहतेहैं और अति हलके शरीरका पर्वतके समान भारी होजाना उसको गरिमा कहते हैं और बहुत भारी पर्वतके समानहो रुईके सदृश होजाना इसको लघिमा कहते हैं और सर्व पदार्थ इच्छामात्रसे योगीके समीप होजाय उसको प्राप्ति कहते हैं और दृश्यादृश्य अर्थात् कभी देख पडे कभी न देखपडे इसको प्राकाम्य कहतेहैं और भूत भविष्य पदार्थको जन्म मरणकी रचना करनेमें समर्थ होय उसको ईशिता कहते हैं और भूत भविष्य वर्तमान पदार्थको इच्छासे अपने आधीन करलेना इसको वशित्वसिद्धि कहते हैं और योगी पाप पुण्यके समुद्रको तरके अपनी इच्छापूर्वक त्रैलोक्यमें विचरताहै ॥ ६१ ॥

मूलम्–ततोऽभ्यासक्रमेणैव घटिकात्रितयं भवेत् ॥ येन स्यात्सकलासिद्धिर्योगिनः स्वेप्सिता ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

टीका-पूर्वोक्त क्रमसे प्राणायाम जब तीन घडीतक स्थिर होजायगा तब योगीको उसके इच्छाके अनुसार सब सिद्ध होजायगा यह निश्चय है ॥ ६२ ॥

मूलम्-वाक्सिद्धिः कामचारित्वं दूरदृष्टिस्तथैव च ॥ दूरश्रुतिः सूक्ष्मदृष्टिः परकायप्रवेशनम् ॥ ६३ ॥ विण्मूत्रलेपने स्वर्णमदृश्यकरणं तथा ॥ भवन्त्येतानि सर्वाणि खेचरत्वं च योगिनाम् ॥ ६४ ॥

टीका-वाक्यसिद्धी स्वेच्छाचारी दूरदृष्टी दूर शब्द श्रवण अतिसूक्ष्म दर्शन दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेकी शक्ति होय और योगी अन्यधातुमें अपने मल मूत्र लेपनमात्रसे स्वर्ण करे और योगीको अदृश्य होजानेकी शक्ति और आकाशमें गमन करनेकी सिद्धि यह सब योगीको कुम्भक सिद्ध होजानेसे स्वयं सिद्ध होजायगा इसमें संशय नहीं है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

मूलम्-यदा भवेद्घटावस्था पवनाभ्यासने परा ॥ तदा संसारचक्रेऽस्मिंस्तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ ६५ ॥

टीका-जब योगीकी घटावस्था होगी अर्थात् उसमें

योगकी घटना होगी तब यह संसारचक्र योगीको कुछअसाध्य न रहैगा ॥ ६५ ॥

मूलम्–प्राणापाननादबिंदुजीवात्मपरमात्मनः ॥ मिलित्वा घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते॥ ६६ ॥

टीका–प्राण अपान नाद बिन्दु जीव आत्मा और परमात्मा इनको एकत्र घटना होनेसे इसको घटावस्था कहते हैं ॥ ६६ ॥

मूलम्–याममात्रं यदा धर्तुं समर्थः स्यात्तदाद्भुतः ॥ प्रत्याहारस्तदैव स्यान्नांतरा भवति ध्रुवम् ॥ ६७ ॥

टीका–एकप्रहरमात्र जब वायु धारण करनेकी सामर्थ्य होगी तब अद्भुत प्रत्याहारकी शक्ति होगी और साधनसे न होगी निश्चय है ॥ ६७ ॥

मूलम्–यं यं जानाति योगीन्द्रस्तं तमात्मेति भावयेत ॥ यैरिन्द्रियैर्यद्विधानस्तदिन्द्रियजयो भवेत ॥ ६८ ॥

टीका–योगी जो जो पदार्थ जाने सो सो पदार्थमें आत्माकीही भावना करे जो इंद्रियसे जिस पदार्थका बोध होगा उस पदार्थमें वही आत्मभावनासे वह इंद्रिय-

जय हो जायगी अर्थात् जैसे नेत्रसे रूपका बोध हो-
ताहै तो जब रूपमें आत्मभावना होगी तब उस भा-
वनासे चक्षु इन्द्रिय रूपमें कदापि आसक्त न होगी
जब वह आसक्त न भई तब वह इन्द्रिय आपही जय
होगई ॥ ६८ ॥

मूलम्-याममात्रं यदा पूर्णं भवेदभ्यासयो-
गतः॥एकवारं प्रकुर्वीत तदा योगी च
कुम्भकम् ॥ ६९ ॥ दण्डाष्टकं यदा वा-
युर्निश्चलो योगिनो भवेत् ॥ स्वसाम-
र्थ्यात्तदांगुष्टे तिष्ठेद्वातुलवत्सुधीः ॥७०॥

टीका-जब एकवारमें पूर्ण एक प्रहरतक योगीका
अभ्याससे कुम्भक स्थिर रहेगा अर्थात् आठ घडीत-
क योगीका वायु निश्चल रहे तब वह अपने सामर्थ्य-
से अङ्गुष्ठमात्रके बलसे अचल अबोधवत् खडा रह-
सक्ता है अर्थात् यह सामर्थ्य भी योगीको होगी औ-
र अपने सामर्थ्यको गोप्य रखनेके हेतु विक्षिप्तकी
चेष्टा योगी दिखलावैगा ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मूलम्-ततः परिचयावस्था योगिनोऽभ्या-
सतो भवेत् ॥ यदा वायुश्चंद्रसूर्यं त्यक्त्वा
तिष्ठति निश्चलम् ॥ ७१ ॥ वायुःपरिचि-
तोवायुः सुषुम्ना व्योम्नि संचरेत् ॥

टीका–इस अन्तरमें योगीकी अभ्याससे परिचयावस्था होगी जब वायु इडा पिङ्गलाको त्यागके निश्चल स्थिर रहेगा ॥ ७१ ॥ तब परिचित होके सुषुम्नाके रन्ध्रसे प्राणवायु आकाशको गमन करेगा ॥

मूलम्–क्रियाशक्तिं गृहीत्वैव चक्रान्भित्त्वा सुनिश्चितम् ॥ ७२ ॥ यदा परिचयावस्था भवेदभ्यासयोगतः ॥ त्रिकूटं कर्मणां योगी तदा पश्यति निश्चितम् ॥ ७३ ॥

टीका–क्रियाशक्तिको ग्रहण करके योगी निश्चय सब चक्रको वेधेगा ॥ ७२ ॥ और जब योग अभ्याससे परिचयावस्था होगी तब त्रिकूट कर्मोंको योगी निश्चय देखेगा तात्पर्य यह है कि, जब योगीका पूर्वोक्त अभ्यास सिद्ध होजायगा तब त्रिकूट अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक मानसिक दुःखको आध्यात्मिक कहते हैं और भूत पिशाचादिसे जो कष्ट होता है उसको आधिभौतिक कहते हैं और देवता आदिसे जो कर्मानुसार कष्ट होताहै उसको आधिदैविक कहते हैं यह त्रिकूटकर्मोंका ज्ञान योगीको हो जाताहै ॥ ७३ ॥

मूलम्–ततश्च कर्मकूटानि प्रणवेन विनाशयेत् ॥ स योगी कर्मभोगाय कायव्यूहं समाचरेत् ॥ ७४ ॥

टीका—इस कर्मकूटको योगी प्रणवद्वारा नाश करदेताहै और यदि पूर्वकृत कर्मफल भोगनेकी इच्छाकरे तो अपने इच्छानुसार इसी जन्ममें इसी शरीरसे भोगलेगा ॥ ७४ ॥

मूलम्—अस्मिन्काले महायोगी पंचधा धारणं चरेत् ॥ येन भूरादिसिद्धिः स्यात्ततो भूतभयापहा ॥ ७५ ॥ आधारे घटिकाः पंच लिंगस्थाने तथैव च ॥ तदूर्ध्वं घटिकाःपञ्च नाभिहृन्मध्यके तथा ॥ ७६ ॥ भ्रूमध्योर्ध्वं तथा पंच घटिका धारयेत्सुधीः ॥ तथा भूरादिना नष्टो योगीन्द्रो न भवेत्खलु ॥ ७७ ॥

टीका—जिसकालमें महायोगी पञ्चधाधारणा सिद्ध करलेगा तब यह पञ्चभूत सिद्ध होजायँगे और इनसे कोई कष्टका भय न होगा. अब धारणाका निर्णय करतेहैं कि, आधारचक्रमें पांचघडी वायु धारणकरे इसी क्रमसे स्वाधिष्टान मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञा चक्रमें अर्थात् गुदा लिङ्ग नाभि हृदय कंठ भ्रुकुटीके मध्यमें ऊपर कहेहुए प्रमाणसे वायु धारण करेगा तो योगीका पञ्चभूतसे निश्चय नाश न होगा ७५॥७६॥७७

मूलम्-मेधावी सर्वभूतानां धारणां यः सम-
भ्यसेत् ॥ शतब्रह्ममृतेनापि मृत्युस्त-
स्य न विद्यते ॥ ७८ ॥

टीका-बुद्धिमान् योगी अभ्याससे पञ्चभूतकी धार-
णा करेगा तो यदि एकशत ब्रह्माभी मृत्युको प्राप्त होंगे
तबभी उसकी मृत्यु न होगी ॥ ७८ ॥

मूलम्-ततोऽभ्यासक्रमेणैव निष्पत्तिर्यो-
गिनो भवेत् ॥ अनादिकर्मबीजानि येन
तीर्त्वाऽमृतं पिबेत् ॥ ७९ ॥

टीका-इस अभ्यासक्रमसे योगीको ज्ञान होता है
और अनादिकर्मबीजको तरके अर्थात् नाश करके
योगी अमृतपान करताहै ॥ ७९ ॥

मूलम्-यदा निष्पत्तिर्भवति समाधेः स्वेन-
कर्मणा ॥ जीवन्मुक्तस्य शांतस्य भवे-
द्धीरस्य योगिनः ॥ ८० ॥ यदा
निष्पत्तिसंपन्नः समाधिः स्वेच्छया
भवेत ॥ ८१ ॥ गृहीत्वा चेतनां वायुः
क्रियाशक्तिं च वेगवान्॥सर्वांश्चक्रान्वि-
जित्वा च ज्ञानशक्तौ विलीयते ॥ ८२ ॥

टीका-जब अपने अभ्यास कर्मसे योगीको समाधिका ज्ञान होगा तब जीवन्मुक्त शान्त होके योगीको ज्ञानसम्पन्न स्वेच्छासमाधि होगी और मन वायु क्रियाशक्तिसहित सर्व चक्रोंको वेधके ज्ञानशक्तीमें लीन होजायगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

मूलम्-इदानीं क्लेशहान्यर्थं वक्तव्यं वायुसाधनम् ॥ येन संसारचक्रेस्मिन्रोगहा निर्भवेद्धुवम् ॥ ८३ ॥

टीका-हे देवि अब क्लेशहानिके अर्थ वायुसाधन कहते हैं जिससे इस संसारचक्रमें निश्चय रोगादिक नाश होजाय और साधकको कष्ट न हो ॥ ८३ ॥

मूलम्-रसनां तालुमूले यः स्थापयित्वा विचक्षणः ॥ पिबेत्प्राणानिलं तस्य रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥ ८४ ॥

टीका-जिह्वाको तालुके मूलमें स्थित करके बुद्धिमान् साधक यदि प्राणवायुको पान करे तो उसके सर्व रोगोंका नाश होजायगा ॥ ८४ ॥

मूलम्--काकचंच्वा पिबेद्वायुं शीतलं यो विचक्षणः ॥ प्राणापानविधानज्ञः स भवेन्मुक्तिभाजनः ॥ ८५ ॥

टीका-जो बुद्धिमान् साधक प्राण अपानके विधानका ज्ञाता काकचञ्चू अर्थात् अधरको काकके चोंचके समान लम्बा करके शीतल वायु पान करताहै सो योगी मुक्तिभाजन है अर्थात् मुक्तिपात्र है ॥ ८५ ॥

मूलम्-सरसं यः पिबेद्वायुं प्रत्यहं विधिना सुधीः ॥ नश्यंति योगिनस्तस्य श्रमदाहजरामयाः ॥ ८६ ॥

टीका-जो साधक नित्य विधानपूर्वक रससहित वायु पान करता है उसके सर्वरोग और श्रम दाह जरा अर्थात् वृद्धावस्थादि नाश होजाते हैं अर्थात् यह सब उसके समीप नहीं आते ॥ ८६ ॥

मूलम्-रसनामूर्ध्वगां कृत्वा यश्चन्द्रे सलिलं पिबेत् ॥ माससमात्रेण योगीन्द्रो मृत्युं जयति निश्चितम् ॥ ८७ ॥

टीका-जो योगी जिह्वाको ऊपर करके चंद्रमासे विगलित सुधारसको पान करताहै सो योगी एक मासमें निश्चय मृत्युको जीत लेता है इस जगह जिह्वा ऊपर करनेसे तात्पर्य खेचरी मुद्रासे है सो खेचरीमुद्रा गुरुमुखसे जानना उचितहै ॥ ८७ ॥

मूलम्-राजदंतबिलं गाढं संपीडय विधिना

पिवेत् ॥ ध्यात्वा कुण्डलिनीं देवीं षण्मासेन कविर्भवेत् ॥ ८८ ॥

टीका-जो साधक राजदन्तको नीचेके दाँतसे दबायके उसके रन्ध्रद्वारा विधिसे वायु पान करे और उस कालमें कुण्डलिनी देवीका ध्यान करेगा तो निश्चय छः मासमें कवि होगा ॥ ८८ ॥

मूलम्-काकचंच्वा पिवेद्वायुं सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥ कुण्डलिन्या मुखे ध्यात्वा क्षयरोगस्य शान्तये ॥ ८९ ॥

टीका-पूर्वोक्त काकचञ्चूसे विधिसे दोनों सन्ध्यामें जो कुण्डलनीकी मुखका ध्यान करके वायु पान करेगा उसका क्षयरोग नाश होजायगा ॥ ८९ ॥

मूलम्-अहर्निशं पिवेद्योगी काकचंच्वा विचक्षणः ॥ पिवेत्प्राणानिलं तस्य रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥ दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिस्तथा स्याद्दर्शनं खलु ॥ ९० ॥

टीका-जो योगी बुद्धिमान् रात्रि दिवस काकचञ्चूसे प्राणवायु पान करतेहैं उनके रोगोंका नाश हो जाताहै और दूरका शब्द श्रवण होताहै और दूरकी वस्तु देख पडती है तथा निश्चय सूक्ष्म दर्शन होताहै ९०॥

मूलम्–दन्तैर्दन्तान्समापीडय पिबेद्वायुं शनैः शनैः ॥ ऊर्ध्वजिह्वः सुमेधावी मृत्युं जयति सोचिरात् ॥ ९१ ॥

टीका–जो बुद्धिमान् दाँतोंसे दांतोंको पीड़ित करके धीरे धीरे वायु पान करेगा और जिह्वा ऊपर करके अमृत पान करेगा सो शीघ्र मृत्युको जीतलेगा ॥ ९१ ॥

मूलम्–षण्मासमात्रमभ्यासं यः करोति दिनेदिने ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रोगान्नाशयते हि सः ॥ ९२ ॥ संव्वत्सरकृताभ्यासान्मृत्युं जयति निश्चितम् ॥ तस्मादतिप्रयत्नेन साधयेद्योगसाधकः ॥ ९३॥ वर्षत्रयकृताऽभ्यासाद्भैरवो भवति ध्रुवम् ॥ अणिमादिगुणाल्लँब्ध्वा जितभूतगणः स्वयम् ॥ ९४ ॥

टीका–जो पहिले कहेहुए अभ्यासको नित्य छः मास करे तो सब रोगोंका नाश होजायगा और सब पापसे मुक्त होजाय और उसी अभ्यासको एक वर्ष करे तो मृत्युको निश्चय जीतले इस हेतुसे साधक इस क्रियाका यत्न करके अवश्य साधन करे और यदि इसका अभ्यास तीन वर्ष करे तो निश्चय भैरव होजाय और

अष्टसिद्धिका लाभ होय और सर्व भूतगण आपही वशमें होजाय ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलम्–रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति ॥ क्षणेन मुच्यते योगी व्याधि-मृत्युजरादिभिः ॥ १५ ॥

टीका–योगीकी जिह्वा यदि क्षणमात्र ऊपर स्थिर होजाय तो उसी क्षणसे सर्वव्याधि और वृद्धावस्था और मृत्युका नाश होजाय. तात्पर्य यह है कि, खेचरी मुद्रासे किञ्चिन्मात्र भी अमृत पान करलेगा तो उसकी मृत्यु न होगी ॥ १५ ॥

मूलम्–रसनां प्राणसंयुक्तां पीडयमानां विचिंतयेत् ॥ न तस्य जायते मृत्युः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ १६ ॥

टीका–जिह्वाको प्राणसहित पीडित करके जो पुरुष ब्रह्मरन्ध्रमें ध्यानसंयुक्त स्थिर करेगा. हे देवी ! हम वारंवार कहतेहैं कि; निश्चय उसकी मृत्यु न होगी॥१६॥

मूलम्–एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः॥ न क्षुधा न तृषा निद्रा नैव मूर्च्छा प्रजायते ॥ १७ ॥

टीका–इस योगअभ्याससे जो पहिले कहाहै वह

पुरुष दूसरा कामदेव होजायगा अर्थात् कामदेवके समान शोभितहोगा और उसको क्षुधा तृषा निद्रा-मूर्च्छा कभी न उत्पन्न होगी ॥ ९७ ॥

मूलम्—अनेनैव विधानेन योगीन्द्रोऽवनिमण्डले ॥ भवेत्स्वच्छन्दचारी च सर्वापत्परिवर्जितः ॥ ९८ ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्मोदते ससुरैरपि ॥ पुण्यपापैर्न लिप्येत एतदाचरणेन सः ॥ ९९ ॥

टीका इस विधानसे योगी संसारमें सर्व दुःखसे रहित होके स्वेच्छाचारी होजायगा और इस आचरणसे योगी पुण्यपापमें लिप्त नहीं होगा न फिर संसारमें उसका जन्म होगा और देवतोंके साथ आनन्द-पूर्वक विचरेगा ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

मूलम्—चतुरशीत्यासनानि सन्ति नानाविधानि च ॥ १०० ॥ तेभ्यश्चतुष्कमादाय मयोक्तानि ब्रवीम्यहम् ॥ सिद्धासनं ततः पद्मासनञ्चोग्रं च स्वस्तिकम् ॥ १०१ ॥

टीका—बहुत प्रकारके चौराशी आसनहैं उनमें उत्तम जो चार आसन हैं उनको हम कहतेहैं, सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन, स्वस्तिकासन, तात्पर्य यहहै कि और

आसन करनेसे नाडी शुद्ध होतीहै परन्तु यह चार आसनसे वायु धारण करके बैठनेमें कष्ट नहीं होता और प्रधान नाडी शीघ्र वश होजाती है ॥ १०० ॥ १०१॥

मूलम्-योनिं संपीडय यत्नेन पादमूलेन साधकः ॥ मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेद्योगवित्सदा ॥ १०२ ॥ ऊर्ध्वं निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः ॥ विशेषोऽवक्रकायश्च रहस्युद्वेगवर्जितः ॥ एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम्॥१०३॥

टीका-योगवेत्ता साधक पादमूल अर्थात् एडीसे योनिस्थानको पीडित करे और दूसरे पादकी एडीको मेढ् अर्थात् लिंगके मूलस्थानपर रक्खे और ऊपर भ्रूके मध्यमें निश्चल दृष्टि रक्खे जितेन्द्रियपुरुष विशेष सीधा शरीर करके विधानपूर्वक वेगवर्जित सावधान होके बैठे इसको सिद्धासन कहते हैं यह आसन सिद्धोंको सिद्धि देनेवाला है॥ १०२ ॥ १०३ ॥

मूलम्-येनाभ्यासवशाच्छीघ्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात् ॥ सिद्धासनं सदा सेव्यं पवनाभ्यासिना परम् ॥ १०४ ॥

टीका--इस अभ्याससे जो पहिले कहाहै शीघ्र योग-

का ज्ञान होताहै इस हेतुसे यह सिद्धासन पवनाभ्यासीको सदा सेवनेके योग्यहै ॥ १०४ ॥

मूलम्-येन संसारमुत्सृज्य लभते परमां गतिम् ॥ १०५ ॥ नातः परतरं गुह्यमासनं विद्यते भुवि ॥ येनानुध्यानमात्रेण योगी पापाद्विमुच्यते ॥ १०६ ॥

टीका-इस सिद्धासनके प्रभावसे साधक संसारको छोडके परमगतिको पाताहै और इससे उत्तम वा गोप्य संसारमें दूसरा आसन नहीं है जिसके ध्यानमात्रसे योगी सर्वपापसे मुक्त होजाताहै ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मूलम्-उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ॥ ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा तु तादृशौ ॥ १०७ ॥ नासाग्रे विन्यसेद्दृष्टिं दन्तमूलञ्च जिह्वया ॥ उत्तोल्य चिबुकं वक्ष उत्थाप्य पवनं शनैः ॥ १०८ ॥ यथाशक्त्या समाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः ॥ यथाशक्त्यैव पश्चात्तु रेचयेदविरोधतः ॥ ॥ १०९ ॥ इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते परम् ॥ ११० ॥

टीका-दोनों चरणोंको उत्तान करके यत्नसे ऊरू अर्थात् जंघापर रक्खे उसीप्रकार दोनों हाथको सीधा-करके ऊरूके मध्यमें रक्खे और नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि और दांतके मूलमें जिह्वा स्थितकरे और वक्ष अथात् हृदयस्थानपर चिबुक अर्थात् ठोडी स्थापन करे और अपानवायुको उठाके प्राणको शनैःशनैः यथाशक्ति पूरक करके धारणाकरे पश्चात् धीरे धीरे रेचक अर्थात् वायुको त्यागदे इसको पद्मासन कहतेहैं यह सर्व व्याधिका नाशक है यह आसन बहुत दुर्लभहै परंतु कोई बुद्धिमान् साधकको प्राप्त होताहै ॥ १०७॥ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥

मूलम्-अनुष्ठाने कृते प्राणः समश्चलति त-
त्क्षणात् ॥ भवेदभ्यासने सम्यक्साध-
कस्य न संशयः ॥ १११ ॥

टीका-पूर्वोक्त अनुष्ठान करनेसे उसी समय प्राण सम होके सुषुम्णामें प्रवेश करेगा अभ्याससे साधकका वायु सम होजायगा इसमें संशय नहीं ॥ १११ ॥

मूलम्-पद्मासने स्थितो योगी प्राणापान-
विधानतः ॥ पूरयेत्स विमुक्तः स्यात्सत्यं
सत्यं वदाम्यहम् ॥ ११२ ॥

टीका-ईश्वर श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं कि पद्मासन-

स्थित योगी प्राण अपानके विधानसे वायु पूरण करेगा सो संसारबन्धसे मुक्त होजायगा इसमें संशय नहीं है हम सत्य कहते हैं ॥ ११२ ॥

मूलम्–प्रसार्य चरणद्वन्द्वं परस्परमसंयुतम्॥ स्वपाणिभ्यां दृढं धृत्वा जानूपरि शिरो न्यसेत् ॥ ११३ ॥ आसनोग्रमिदं प्रोक्तं भवेदनिलदीपनम् ॥ देहावसानहरणं पश्चिमोत्तानसंज्ञकम्॥ ११४॥ य एतदासनं श्रेष्ठं प्रत्यहं साधयेत्सुधीः॥ वायुः पश्चिममार्गेण तस्य सञ्चरति ध्रुवम् ॥११५॥

टीका–दोनों चरणोंको संग परस्पर लम्बाकरके दोनों हाथोंसे बलसे धरे और जानुपर शिरको स्थितकरे उसको उग्रासन कहतेहैं, और पश्चिमतान भी संज्ञा है इससे वायुदीपन होताहै और मृत्युका नाशकरता है यह सब आसनोंमें श्रेष्ठ है और बुद्धिमान् इसको नित्य साधन करे तो उसका वायु पश्चिम मार्गसे अवश्य सञ्चार करेगा॥ ११३॥ ११४॥ ११५॥

मूलम्–एतदभ्यासशीलानां सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ तस्माद्योगी प्रयत्नेन साधयेत्सिद्धमात्मनः ॥ ११६ ॥

टीका-ऐसे पूर्वोक्त अभ्यासमें जो लोग तत्परहैं उन-को सर्व सिद्धि उत्पन्न होती है. इस हेतुसे यत्न करके योगी आत्माके सिद्धहोनेकी साधना करे ॥११६॥

मूलम्-गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्य-चित् ॥ येन शीघ्रं मरुत्सिद्धिर्भवेद्दुःखौ-घनाशिनी ॥ ११७ ॥

टीका-यह आसन जो पहिले कहा है यत्नसे गोप-नीयहै सबको देना उचित नहीं है परंतु अधिकारीको देना योग्यहै इससे वहुत शीघ्र वायु सिद्ध होजाताहै और यह सिद्धि दुःखके समूहको नाश करने-वाली है ॥ ११७ ॥

मूलम्-जानूर्वोरन्तरे सम्यग्धृत्वा पादतले उभे ॥ समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ११८ ॥ अनेन विधिना यो-गी मारुतं साधयेत्सुधीः ॥ देहे न क्रमते व्याधिस्तस्य वायुश्च सिद्ध्यति ॥ ११९ ॥ सुखासनमिदं प्रोक्तं सर्वदुःखप्रणाशनम् ॥ स्वस्तिकं योगिभिर्गोप्यं स्वस्तीकरण-मुत्तमम् ॥ १२० ॥

टीका-जानु और ऊरूके मध्यमें बराबर पादको

ऊपर नीचे धरे और समकाय अर्थात् बरावर शरीर करके सुखपूर्वक बैठे उसको स्वस्तिकासन कहतेहैं. इस विधानसे बुद्धिमान् योगी वायुका साधन करे तो उसके शरीरमें व्याधी प्रवेश नहीं करती और उसको वायु सिद्धहोजातीहै इसको सुखासन कहतेहैं यह सर्वदुःखका नाशक है यह स्वस्तिकासन योगी लोगोंको गोप्य रखना उचितहै इसकारणसे की उत्तम कल्याणका कारक है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगाभ्यासतत्त्वकथनं नाम तृतीयः पटलः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थपटलः ।

मूलम्–आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे पूरयेन्मनः ॥ गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुंच्य प्रवर्तते ॥ १ ॥

टीका–पहिले पूरक योगविधानसे आधारपद्ममें वायुको मन सहित पूरक करके स्थित करे और गुद मेढ्रके मध्यमें जो योनिस्थान है उसको यत्नसे आकुञ्चन करनेमें प्रवृत्त होय ॥ १ ॥

मूलम्–ब्रह्मयोनिगतं ध्यात्वा कामं कन्दुकसन्निभम् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटि-

सुशीतलम् ॥२॥ तस्योर्ध्वे तु शिखासूक्ष्मा चिद्रूपा परमाकला ॥ तया सहितमात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥ ३ ॥

टीका-ब्रह्मयोनिके मध्यमें कामपुष्प अर्थात् कामबाणके समान कोटिसूर्यके सदृश प्रकाश और कोटि चन्द्रमाके समान शीतल कामदेवका ध्यान करे और उसके ऊर्ध्व भागमें सूक्ष्म ज्योति शिखा चैतन्यस्वरूपा परमाशक्तिसहित एक परमात्माका चिन्तन करे ॥ २ ॥ ३ ॥

मूलम्-गच्छति ब्रह्ममार्गेण लिंगत्रयक्रमेण वै ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥४॥ अमृतं तद्धि स्वर्गस्थं परमानन्दलक्षणम् ॥ श्वेतरक्तं तेजसाढ्यं सुधाधाराप्रवर्षिणम् ॥ पीत्वा कुलामृतं दिव्यं पुनरेव विशेत्कुलम् ॥ ५ ॥

टीका-उसी ब्रह्मयोनिसे जीव सुषुम्णा रन्ध्रद्वारा क्रमसे तीन लिङ्ग अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारणस्वरूपसे प्रस्थान करताहै और स्वर्गस्थ अमृत परम आनन्दका लक्षण श्वेत रक्त वर्ण कोटि सूर्यके सदृश तेज प्रकाश और कोटिचन्द्रमाके समान शीतल सुधाधारा

चर्षी दिव्यकुलामृतको पान करके फिर योनिमंडलमें स्थित होजाताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलम्-पुनरेव कुलं गच्छेन्मात्रायोगेन नान्यथा ॥ सा च प्राणसमाख्याता ह्यस्मिंस्तन्त्रे मयोदिता ॥ ६ ॥

टीका-फिर ब्रह्मयोनिसे प्राणायामयोग करके प्राण कुलमंडलमें जाताहै इस तंत्रमें जो हमने कहाहै हे देवि! उस ब्रह्मयोनिको प्राणके समान कहते हैं ॥ ६ ॥

मूलम्-पुनः प्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादिशिवात्मकम् ॥ ७ ॥ योनिमुद्रा परा ह्येषा बन्धस्तस्याः प्रकीर्तितः ॥ तस्यास्तु बन्धमात्रेण तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ ८ ॥

टीका-फिर तीसरे बार काल अग्नि आदि शिवात्मक जीव प्रस्थानपूर्वक चंद्रमण्डलमें दिव्य अमृतपान करके फिर ब्रह्मयोनिमें लय होजाताहै हे देवि! इस बन्धको योनिमुद्रा कहते हैं केवल बन्धमात्रसे संसारमें असाध्य कोई वस्तु नहीं है अर्थात् सब सिद्ध होसक्ताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

मूलम्-छिन्नरूपास्तु ये मन्त्राः कीलिताः स्तंभिताश्च ये ॥ दग्धामन्त्राः शिरोहीना

मलिनास्तु तिरस्कृताः ॥ ९ ॥ मन्दा बालास्तथा वृद्धाः प्रौढा यौवनगर्विताः ॥ भेदिनो भ्रमसंयुक्ताः सप्ताहं मूर्च्छिताश्च ये ॥ १० ॥ अरिपक्षे स्थिता ये च निर्वीर्याः सत्त्ववर्जिताः ॥ तथा सत्त्वेन हीनाश्च खण्डिताः शतधाकृताः ॥ ११ ॥ विधानेन च संयुक्ताः प्रभवन्त्यचिरेण तु ॥ सिद्धिमोक्षप्रदाः सर्वे गुरुणा विनियोजिताः ॥ १२ ॥ यद्यदुच्चरते योगी मंत्ररूपं शुभाशुभम् ॥ तत्सिद्धिं समवाप्नोति योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १३ ॥ दीक्षयित्वा विधानेन अभिषिच्य सहस्रधा ॥ ततो मंत्राधिकारार्थमेषा मुद्रा प्रकीर्तिता ॥ १४ ॥

टीका–जो मन्त्र छिन्नरूप हैं और कीलित हैं स्तम्भित हैं और जो मन्त्र दग्ध हैं शिरहीन हैं मलीन हैं और जिनका अनादर है और मन्द हैं बाल हैं वृद्धहैं प्रौढहैं और जो यौवनगर्वित हैं और भेदितहैं भ्रमसंयुक्त हैं सप्ताहसे मूर्च्छित हैं और जो शत्रुकेपक्षमें हैं निर्वीर्य हैं

सत्त्वरहित हैं खण्डितहैं सो खण्ड होगएहैं इस विधिसे युक्त होके साधन करनेसे शीघ्र प्रकर्ष करके सिद्ध होजायगा गुरुशिक्षासे सब सिद्ध और मोक्षप्रद होजाताहै योगीसे जो मन्त्र शुभ वा अशुभरूप उच्चारण होताहै सो सब योनिमुद्राके बन्धनमात्रसे सिद्ध होजाताहै विधानपूर्वक मंत्रके अधिकारार्थ गुरुको उचितहै कि इस योनिमुद्राके दीक्षाका अभिषेक सहस्रधा शिष्यको करे ॥ ९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

मूलम्–ब्रह्महत्यासहस्राणि त्रैलोक्यमपि घातयेत ॥ नासौ लिप्यति पापेन योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १५ ॥

टीका–यदि एक सहस्र ब्रह्महत्याकरके और त्रैलोक्यका भी घात करदे अर्थात् प्राणिमात्रका नाश करदे तो भी वह इस योनिमुद्राके बन्धमात्रसे पापमें लिप्त न होगा अर्थात् उसको पाप न लगेगा ॥ १५ ॥

मूलम्–गुरुहा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ एतैः पापैर्न बध्येत योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १६ ॥

टीका--गुरुघातक मद्यपाई चोर गुरुकी शय्यामें रमण करनेवाला ऐसे अनेक पातकसेभी साधक योनिमुद्राके बन्ध प्रभावसे बन्धायमान न होगा ॥१६॥

मूलम्-तस्मादभ्यसनं नित्यं कर्तव्यं मोक्ष-
काँक्षिभिः ॥ अभ्यासाज्जायते सिद्धिर-
भ्यासान्मोक्षमाप्नुयात ॥ १७॥

टीका-इस हेतुसे मोक्षकांक्षीको उचित है कि, नित्य अभ्यास करे आभ्यससे सिद्धि होती है और अभ्यास-हीसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

मूलम्-संविदंलभतेऽभ्यासाद्योगोभ्यासात्प्र-
वर्तते ॥ मुद्राणां सिद्धिरभ्यासादभ्यासा-
द्वायुसाधनम् ॥ १८॥ कालवञ्चनमभ्या-
सात्तथा मृत्युञ्जयो भवेत ॥ वाक्सिद्धिः
कामचारित्वं भवेदभ्यासयोगतः॥ १९ ॥

टीका-अभ्याससे ज्ञान प्राप्त होताहै और अभ्या-ससे योगमें प्रवृत्ति होती है और अभ्याससे मुद्रा सिद्ध होती हैं और अभ्याससे वायुका साधन होताहै और अभ्याससे मनुष्य कालसे बचताहै और अभ्याससे मृत्युंजय होजाताहै और अभ्यासयोगसे वाक्यसिद्धि और मनुष्य इच्छाचारी होजाताहै. तात्पर्य यह है कि, सब वस्तुके सिद्धिका कारण अभ्यास है. इस हेतुसे आ-लस्यको छोडके जिस वस्तुमें मनुष्य अभ्यास करेगा वह अवश्य सिद्ध होजायगा॥ १८॥ १९ ॥

मूलम्-योनिमुद्रा परं गोप्या न देया यस्य कस्यचित् ॥ सर्वथा नैव दातव्या प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ २० ॥

टीका-यह योनिमुद्रा परमगोपनीय है अनधिकारीको कदापि न दे यह सर्वथा देनेके योग्य नहीं है यदि कण्ठगत प्राण होजायँ तो भी देना उचित नहीं है ॥ २० ॥

मूलम्-अधुना कथयिष्यामि योगसिद्धिकरं परम् ॥ गोपनीयं सुसिद्धानां योगं परमदुर्लभम् ॥ २१ ॥

टीका-हे देवि! अब जो योग कहैंगे वह परमसिद्धिका देनेवाला है सिद्ध लोगोंको इस परम दुर्लभ योगको गोप्य रखना उचितहै ॥ २१ ॥

मूलम्-सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली ॥ तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोपि च ॥ २२ ॥

टीका-गुरुके प्रसादसे निद्रिता कुण्डलिनी देवी जब जाग्रत होती हैं तब सर्व पद्म और सर्व ग्रंथी वेधित हो जाती हैं अर्थात् सुषुम्णा रन्ध्रद्वारा प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रपर्यंत संचार करने लगजाताहै ॥ २२ ॥

मूलम्-तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्व-

रीम् ॥ ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत् ॥ २३ ॥

टीका—इसकारणसे यत्नपूर्वक ब्रह्मरन्ध्रके मुखमें जो ईश्वरी कुण्डलिनी देवी शयन करती हैं उनको उठानेके अर्थ मुद्राका अभ्यास उचित है ॥ २३ ॥

मूलम्—महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ॥ जालंधरो मूलबंधो विपरीतकृतिस्तथा ॥ २४॥ उड्डानं चैव वज्रोली दशमे शक्तिचालनम् ॥ इदं हि मुद्रादशकं मुद्राणामुत्तमोत्तमम् ॥ २५ ॥

टीका—अब उत्तम मुद्राबन्ध वेध कहते हैं महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरीमुद्रा, जालन्धरबन्ध. मूलबन्ध, विपरीतकरणीमुद्रा, उड्डानबन्ध, वज्रोलीमुद्रा और दशवीं शक्तिचालनमुद्रा, यह दशों मुद्रा सबमें अतिउत्तम हैं ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥

अथ महामुद्राकथनम् ।

मूलम्—महामुद्रां प्रवक्ष्यामि तन्त्रेऽस्मिन्मम वल्लभे ॥ यां प्राप्य सिद्धाः सिद्धिं च कपिलाद्याः पुरा गताः ॥ २६ ॥

टीका–हे प्रिये पार्वती ! इस तन्त्रमें महामुद्रा जो हम कहतेहैं इसको लाभ करके पूर्व कपिलआदिक सिद्धवरको सिद्धि प्राप्त भई ॥ २६ ॥

मूलम्–अपसव्येन संपीडय पादमूलेन सादरम् ॥ गुरूपदेशतो योनिं गुदमेढ्रान्तरालगाम् ॥२७॥ सव्यं प्रसारितं पादं धृत्वा पाणियुगेन वै ॥ नवद्वाराणि संयम्य चिबुकं हृदयोपरि ॥ २८ ॥ चित्तं चित्तपथे दत्त्वा प्रभवेद्वायुसाधनम् ॥ महामुद्राभवेदेषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥२९॥ वामाङ्गेन समभ्यस्य दक्षाङ्गेनाभ्यसेत्पुनः ॥ प्राणायामं समं कृत्वा योगी नियतमानसः ॥ ३० ॥

टीका–वामपादके एडीसे गुदा और मेढ्रके मध्यमें जो योनि है उसको आदरसहित गुरुके उपदेशपूर्वक पीडितकरे अर्थात् दबावे और दक्षिणपाद प्रसारके अर्थात् लम्बा करके दोनों हाथोंसे धरे और नवद्वारोंको रोक करके चिबुक अर्थात् ठोडीको हृदयपर स्थित करे और चित्तवृत्तिको चैतन्यमें स्थिर करके वायुका साधन करना उचित है यह महामुद्रा सर्वतन्त्रोंके प्रमाण-

से गोप्यहै पहिले वामांगसे अभ्यास करके फिर दक्षिण अंगसे अभ्यास करे योगी स्थिरबुद्धिको उचित है कि-इसप्रकारसे प्राणायामको सम करे॥२७॥२८॥२९॥३०

मूलम्-अनेन विधिना योगी मन्दभाग्यो-
पि सिध्यति॥ सर्वासामेव नाडीनां चालनं
बिन्दुमारणम् ॥३१॥ जीवनन्तु कषायस्य
पातकानां विनाशनम् ॥ कुण्डलीतापनं
वायोर्ब्रह्मरन्ध्रप्रवेशनम्॥ ३२ ॥ सर्वरो-
गोपशमनं जठराग्निविवर्धनम् ॥ वपुषा
कान्तिममलांजरामृत्युविनाशनम् ॥३३ ॥
वांछितार्थफलं सौख्यमिन्द्रियाणाञ्च मा-
रणम् ॥ एतदुक्तानि सर्वाणि योगारूढस्य
योगिनः ॥ ३४ ॥ भवेदभ्यासतोऽवश्यं
नात्र कार्या विचारणा ॥

टीका-इस विधानसे मन्दभाग्य योगी भी सिद्ध होजायगा और इस महामुद्राके प्रभावसे सर्व नाडीका चलन सिद्ध होजायगा और बिन्दु स्थिर होगा और जीवनको आकर्षित रक्खेगा और सर्व पातकका नाश होजायगा और कुण्डलिनीको हठात् उठाय वायुको ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करेगा और जठराग्नि प्रज्वलित होके

सर्व रोगोंका नाश करदेगा और शरीरमें सुन्दर कान्ति होगी और वृद्धावस्थासहित मृत्युका नाश होजायगा और सुखसहित वाञ्छित फल लाभ होगा और इन्द्रियोंका निग्रह रहेगा यह सब जो कहा है सो योगारूढ योगीको अभ्याससे वश होजाताहै इसमें संशय नहीं है निश्चय है ॥३१॥३२॥३३॥३४॥

मूलम्-गोपनीया प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते ॥ यां तु प्राप्य भवाम्भोधेः पारं गच्छन्ति योगिनः ॥ ३५ ॥

टीका-हे सुरपूजिते देवि! यह मुद्रा यत्न करके गोपनीय है योगीलोग इसका लाभ करके संसाररूपी समुद्रके पार होजाते हैं ॥ ३५ ॥

मूलम्-मुद्रा कामदुघा ह्येषा साधकानां मयोदिता ॥ गुप्ताचारेण कर्तव्या न देया यस्य कस्यचित ॥ ३६ ॥

टीका-हे देवी! यह मुद्रा जो हमने कहीहै साधकोंको कामधेनुरूप है अर्थात् वाञ्छित फलकी दाता है इसको गुप्त करके अभ्यास करना उचित है और सबको अर्थात् अनधिकारीको देना उचित नहीं है ॥ ३६ ॥

अथ महाबन्धकथनम्।

मूलम्-ततः प्रसारितः पादो विन्यस्य तमुरु-

परि ॥ ३७ ॥ गुदयोनिं समाकुंच्य कृत्वा चापानमूर्ध्वगम् ॥ योजयित्वा समानेन कृत्वा प्राणमधोमुखम् ॥ ३८ ॥ बन्धयेदूर्ध्वगत्यर्थं प्राणापानेन यः सुधीः ॥ कथितोऽयं महाबन्धः सिद्धिमार्गप्रदायकः ॥ ॥ ३९ ॥ नाडीजालाद्रसव्यूहो मूर्धानं याति योगिनः ॥ उभाभ्यां साधयेत्पद्भ्यामेकैकं सुप्रयत्नतः ॥ ४० ॥

टीका–तदनन्तर पादको प्रसारके अर्थात् फैलाके दक्षिणचरणको वाम ऊरूपर स्थित करके और गुदा और योनिको आकुञ्चन करके अपानको ऊर्ध्व करके समानवायुके साथ सम्बन्ध करके और प्राणवायुको अधोमुख करे यह बन्ध प्राण अपानके ऊर्ध्वगतिके हेतु बुद्धिमान् साधकके प्रति कहाहै और यह महाबन्ध सिद्धिमार्गका दाता है और योगीलोगोंके नाडियोंका रससमूह इस बन्धसे ऊपरको गमन करताहै यह दोनों मुद्रा और बन्ध एक एकको दोनों अंगसे यत्न करके करना उचितहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

मूलम्–भवेदभ्यासतो वायुः सुषुम्नामध्यसङ्गतः ॥ अनेन वपुषः पुष्टिर्दृढबन्धोऽस्थि-

पंजरे॥ ४१ ॥ संपूर्णहृदयो योगी भव-
न्त्येतानि योगिनः॥बन्धेनानेन योगी-
न्द्रः साधयेत्सर्वमीप्सितम् ॥ ४२ ॥

टीका-अभ्यासखे प्राणवायु सुषुम्णाके मध्यमें स्थित होगा और इस महाबंधके प्रभावसे शरीर पुष्ट रहैगा और अस्थिपंजर और शरीरका सब बन्ध दृढ अर्थात् बलिष्ठ होजायगा और योगीका ह्रदय सन्तोषसे पूर्ण और आनन्दित रहेगा. यह सब योगीको इस महाबन्धके प्रभावसे स्वयं लाभ होजायगा और इसी बन्धके साधनसे योगी अपनी इच्छाके अनुसार सब सिद्ध करलेगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ महावेधकथनम् ।

मूलम्-अपानप्राणयोरैक्यं कृत्वा त्रिभुवने-
श्वरि॥महावेधस्थितो योगी कुक्षिमापूर्य
वायुना ॥ स्फिचौ संताडयेद्धीमान्वेधो-
ऽयं कीर्तितो मया ॥ ४३ ॥

टीका-हे त्रिभुवनेश्वरी अपान और प्राणको एक करके महावेधस्थित योगी उदरको वायुसे पूर्ण करके बुद्धिमान् दोनों स्फिच अर्थात् पार्श्वको ताडन करे इसको हमने वेध कहा है ॥ ४३ ॥

मूलम्-वेधेनानेन संविध्य वायुना योगि-
पुंगवः ॥ ग्रंथिं सुषुम्णामार्गेण ब्रह्मग्रंथिं
भिनत्त्यसौ ॥ ४४ ॥

टीका-बुद्धिमान् योगी इस वेधद्वारा वायुसे सर्व ग्रन्थीको वेधन करके सुषुम्णारन्ध्रद्वारा ब्रह्मग्रन्थीको भेदन करताहै ॥ ४४ ॥

मूलम्-यः करोति सदाभ्यासं महावेधं सु-
गोपितम् ॥ वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य जराम-
रणनाशिनी ॥ ४५ ॥

टीका-जो मनुष्य इस उत्तम महावेदको गोपित करके सर्वदा अभ्यास करेगा उसकी जरामरण नाशि-नी वायुसिद्धि होजायगी ॥ ४५ ॥

मूलम्-चक्रमध्ये स्थिता देवाः कम्पन्ति
वायुताडनात् ॥ कुण्डल्यपि महामाया
कैलासे सा विलीयते ॥ ४६ ॥

टीका-शरीरस्थ चक्रमें जो देवता हैं वह वायुके ताडनसे कम्पायमान होते हैं और महामाया कुण्डलि-नी देवी कैलास अर्थात् ब्रह्मस्थानमें लय होती है तात्प-र्य यह है कि, चक्रस्थित देवता अर्थात् गणेशजी, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवजी, मायाधीश, जोतिस्वरूप, ईश्वर

क्रमसे आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर अनाहत, विशुद्ध आज्ञाचक्रमें जो स्थित हैं वायुके वेगसे चक्ररन्ध्रको छोडदेते हैं तब वायुका प्रवेश होताहै इस हेतुसे यह महावेध अवश्य करना उचित है ॥ ४६ ॥

मूलम्-महामुद्रामहाबन्धौ निष्फलौ वेधव-
र्जितौ ॥ तस्माद्योगी प्रयत्नेन करोति
त्रितयं क्रमात् ॥ ४७ ॥

टीका-महामुद्रा और महाबन्ध विना वेधके निष्फल हैं अर्थात् वेध न करनेसे मुद्रा और बन्धका कुछ फल न होगा इसहेतुसे योगीको उचित है कि, यत्नपूर्वक क्रमसे मुद्रा, बन्ध, वेध तीनोंका अभ्यास करे॥ ४७॥

मूलम्-एतत्त्रयं प्रयत्नेन चतुर्वारं करोति
यः ॥ षण्मासाभ्यन्तरं मृत्युं जयत्येव
न संशयः ॥ ४८ ॥

टीका-जो यह मुद्रा बन्ध वेध तीनोंका अभ्यास यत्न करके रात्रि दिवसमें चारवार करेगा सो छः मासमें निश्चय मृत्युको जीतलेगा इसमें संशय नहींहै॥ ४८॥

मूलम्-एतत्त्रयस्य माहात्म्यं सिद्धो जाना-
ति नेतरः ॥ यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे
सिद्धिं सम्यग्लभन्ति वै ॥ ४९ ॥

टीका-यह तीनोंके माहात्म्यको सिद्धलोग जानते हैं इतरलोग अर्थात् सांसारिक मनुष्य नहीं जानते इसके जानलेनेसे साधकलोगोंको सर्वसिद्धिलाभ होती है ॥ ४९ ॥

मूलम्-गोपनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धि-
मीप्सुभिः ॥ अन्यथा च न सिद्धिः
स्यान्मुद्राणामेष निश्चयः ॥ ५० ॥

टीका-सिद्धिकांक्षी साधकको उचित है कि, यह सब मुद्राको यत्नपूर्वक गोप्य रक्खे इनको प्रकाश करनेसे कदापि सिद्धि न होगी यह निश्चय है ॥५०॥

अथ खेचरीमुद्राकथनम् ।

मूलम्-भ्रुवोरन्तर्गतां दृष्टिं विधाय सुदृढां
सुधीः ॥ ५१ ॥ उपविश्यासने वज्रे नानो-
पद्रववर्जितः ॥ लम्बिकोर्ध्वे स्थिते गर्ते
रसनां विपरीतगाम् ॥ ५२ ॥ संयोजये-
त्प्रयत्नेन सुधाकूपे विचक्षणः ॥ मुद्रैषा
खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरोधतः॥ ५३ ॥

टीका-बुद्धिमान् साधक दोनों भ्रू अर्थात् भ्रुकुटी-के मध्यमें दृढ करके दृष्टिको स्थिर करके और नाना उपद्रवरहित होके वज्रासन अर्थात् सिद्धासनसे स्थित होयके जिह्वाको विपरीत अर्थात् ऊपर सुधाकूप स्वरूप

तालूविवरमें यत्नसे बुद्धिमान् साधक संयोजित करे अर्थात् संबन्धकरे हे पार्वति ! भक्तोंके प्रति हमने प्रकाशकरके यह खेचरीमुद्रा कही है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

मूलम्-सिद्धीनां जननी ह्येषा मम प्राणाधिकप्रिया ॥ निरन्तरकृताभ्यासात्पीयूषं प्रत्यहं पिबेत् ॥ तेन विग्रहसिद्धिः स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ५४ ॥

टीका-यह खेचरीमुद्रा सर्वसिद्धिकी माता है और हे देवी ! हमको प्राणसेभी अधिक प्रिय है जो निरंतर इसके अभ्याससे नित्य अमृतपान करताहै उस कारणसे शरीर सिद्ध होजाता है अर्थात् नाश नहीं होता और मृत्युरूप हस्तीको यह खेचरीरूपी सिंह हन्ताहै ॥ ५४ ॥

मूलम्-अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि ॥ खेचरी यस्य शुद्धा तु स शुद्धो नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

टीका-अपवित्र होय वा पवित्र होय अथवा किसी अवस्थामें होय जिसको यह खेचरीमुद्रा सिद्ध है वह सर्वदा शुद्ध है इसमें संशय नहीं है ॥ ५५ ॥

मूलम्-क्षणार्धं कुरुते यस्तु तीर्त्वा पापमहार्णवम् ॥ दिव्यभोगान्प्रभुक्त्वा च सत्कुले स प्रजायते ॥ ५६ ॥

टीका–जो इस खेचरीमुद्राको क्षणार्धभी करेगा वह महापापसागरके पार होके सुखपूर्वक स्वर्गका भोग भोगेगा पश्चात् उत्तम कुलमें उसका जन्म होगा॥५६॥

मूलम्–मुद्रैषा खेचरी यस्तु स्वस्थचित्तो ह्यतन्द्रितः ॥ शतब्रह्मगतेनापि क्षणार्धं मन्यते हि सः ॥ ५७ ॥

टीका–जो मनुष्य इस खेचरीमुद्राको स्वस्थचित्त ब्रह्मपरायणहोके करेगा उसको यदि शतब्रह्माभी गत भावको प्राप्तहों क्षणार्ध प्रतीत होगा ॥ ५७ ॥

मूलम्–गुरूपदेशतो मुद्रां यो वेत्ति खेचरीमिमाम् ॥ नानापापरतो धीमान्स याति परमां गतिम् ॥ ५८ ॥

टीका–गुरूपदेशसे जिसको यह खेचरीमुद्रा लाभ होगी वह यदि नानापापरत होगा तो भी बुद्धिमान् साधक परमगतिको प्राप्तहोगा अर्थात् मोक्ष होजायगा ॥ ५८ ॥

मूलम्–सा प्राणसदृशी मुद्रा यस्मिन्कस्मिन्न दीयते ॥ प्रच्छाद्यते प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते ॥ ५९ ॥

टीका–हे सुरपूजिते पार्वती! यह खेचरीमुद्रा प्राणके

बराबर है सामान्य मनुष्यको देना उचित नहीं है इस मुद्राको यत्न करके गोपित रखनेमें कल्याणहै॥५९॥

अथ जालन्धरबन्ध ।

मूलम्-बद्धागलशिराजालं हृदये चिबुकं न्यसेत् ॥ बन्धोजालन्धरः प्रोक्तो देवाना-मपि दुर्लभः ॥६०॥ नाभिस्थवह्निर्जन्तूनां सहस्रकमलच्युतम् ॥ पिबेत्पीयूषविस्तारं तदर्थं बन्धयेदिमम् ॥ ६१ ॥

टीका-गुरूपदेशद्वारा गलशिराजालको बांधके चिबुक अर्थात् ठोडीको हृदयमें स्थित करे इसको जालन्धरबन्ध कहते हैं। यह देवतोंकोभी दुर्लभ है नाभी-स्थित जीव जठरानल सहस्रदल कमलसे जो अमृत स्रवताहै उसको पान करजाताहै इस हेतुसे यह जालन्धरबन्ध करना उचित है तात्पर्य यह है कि, नाभि-स्थित सूर्य अमृतको पान करजाते हैं इसीकारणसे मृत्यु होतीहै इस जालन्धरबन्धके करनेसे चंद्रमण्डलच्युत अमृत सूर्यमण्डलमें नहीं जाता योगी आपही पान करके चिरंजीव रहताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

मूलम्-बन्धेनानेन पीयूषं स्वयं पिबति बुद्धिमान् ॥ अमरत्वञ्च सम्प्राप्य मोदते भुवनत्रये ॥ ६२ ॥

टीका-इस जालन्धरबन्धके प्रभावसे बुद्धिमान् योगी स्वयं अमृत पान करताहै और अमरत्वको पायके तीनोंलोकमें आनन्दपूर्वक विचरताहै ॥ ६२ ॥

मूलम्-जालन्धरो बन्ध एष सिद्धानां सिद्धिदायकः ॥ अभ्यासः क्रियते नित्यं योगिना सिद्धिमिच्छता ॥ ६३ ॥

टीका-यह जालन्धरबन्ध सिद्धोंको सिद्धिदेनेवाला है इस कारणसे सिद्धिकांक्षी योगीको इसका नित्यअभ्यास करना उचित है ॥ ६३ ॥

अथ मूलबन्धः।

मूलम्-पादमूलेन संपीड्य गुदमार्गेषु यन्त्रितम् ॥ ६४ ॥ बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं सुचारयेत्॥ कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः ॥ ६५ ॥

टीका-पादमूल अर्थात् एडीसे गुदामार्गको आकुञ्चन करके पीडित करे और बलसे अपानवायुको आकर्षण करके ऊर्ध्वको लेजाय अर्थात् प्राणके साथ सम्बन्धकरे इसको मूलबन्ध कहतेहैं यह बन्ध जरा मरणका नाश करनेवाला है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

मूलम्-अपानप्राणयोरैक्यं प्रकरोत्यधि-

कल्पितम् ॥ बन्धेनानेन सुतरां योनि-
मुद्रा प्रसिद्ध्यति ॥ ६६ ॥

टीका-इस कल्पितबन्धसे अपान और प्राणको एक करे और इसी मूलबन्धके प्रभावसे योनिमुद्रा आपही सिद्ध होजायगी ॥ ६६ ॥

मूलम्-सिद्धायां योनिमुद्रायां किं न सिध्य-
ति भूतले ॥ बन्धस्यास्य प्रसादेन गगने
विजितानिलः ॥ पद्मासने स्थितो योगी
भुवमुत्सृज्य वर्तते ॥ ६७ ॥

टीका-योनिमुद्राके सिद्ध होनेसे सिद्धलोगोंको इस संसारमें सब सिद्धहोसक्ताहै इस मूलबन्धके प्रसादसे वायुको योगी जीतके पद्मासनस्थित होके भूमिको त्याग देगा और आकाशमें गमन करेगा ॥६७॥

मूलम्-सुगुप्ते निर्जने देशे बन्धमेनं
समभ्यसेत् ॥ संसारसागरं तर्तुं यदी-
च्छेद्योगिपुंगवः ॥ ६८ ॥

टीका-पवित्र योगी यदि संसारसागरसे पार होनेकी इच्छा करे तो निर्जनदेश और गुप्तस्थानमें इस मूलबन्धका अभ्यास करना उचितहै ॥६८॥

अथ विपरीतकरणी मुद्रा ।

मूलम्-भूतले स्वशिरो दत्त्वा खे नयेच्चरणद्व-

यम् ॥ विपरीतकृतिश्चैषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ६९ ॥

टीका—साधक अपने शिरको भूमिपर धरे और दोनों चरणोंको ऊपर आकाशमें निरालम्ब स्थिर करे यह विपरीतकरणी मुद्रा सर्वतन्त्रोंकरके गोपित है अर्थात् प्रकाश करने योग्य नहीं है ॥ ६९ ॥

मूलम्—एतद्यः कुरुते नित्यमभ्यासं याममात्रतः ॥ मृत्युं जयति योगीशः प्रलये नापि सीदति ॥ ७० ॥

टीका—इसप्रकारसे इस मुद्राका अभ्यास नित्य एक प्रहर करे तो योगी निश्चय मृत्युको जीत लेगा और प्रलयमेंभी उसको कुछ कष्ट न होगा ॥ ७० ॥

मूलम्—कुरुतेऽमृतपानं यः सिद्धानां समतामियात् ॥ स सेव्यः सर्वलोकानां बन्धमेनं करोति यः ॥ ७१ ॥

टीका—जो पुरुष शरीरस्थ अमृतपान करता है उसको सिद्धोंकी समता प्राप्त होती है और इस मुद्राबन्धको जो करताहै वह सर्वलोकमें पूजनीय है ॥ ७१ ॥

मूलम्—नाभेरूर्ध्वमधश्चापि तानं पश्चिममाचरेत्॥ उड्डयानबंध एष स्यात्सर्वदुः-

खौघनाशनः॥७२॥ उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत्॥ उड्डयानाख्योऽत्र बन्धोयं मृत्युमातङ्गकेसरी ॥७३ ॥

टीका—नाभिसे ऊपर और नीचेको आकुञ्चन करे इसको उड्डयानबन्ध कहते हैं यह दुःखके समूहको नाशकरनेवाला है उदरको पीछे आकर्षण करे और नाभिसे ऊपर भागमें आकुञ्चन करे यह उड्डयानबन्ध है और मृत्युरूपी मातङ्गका नाशकरनेवाला यह बंधरूपी सिंह है॥ ७२ ॥ ७३ ॥

मूलम्—नित्यं यः कुरुते योगी चतुर्वारं दिने दिने॥ तस्य नाभेस्तु शुद्धिः स्याद्येन सिद्धो भवेन्मरुत् ॥ ७४ ॥

टीका—जो योगी नित्य इस बंधको चारवार अभ्यास करेगा उसका नाभिचक्र शुद्ध होके वायु सिद्ध होजायगा ॥ ७४ ॥

मूलम्—षण्मासमभ्यसन्योगी मृत्युं जयति निश्चितम्॥ तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिः प्रजायते ॥ ७५ ॥

टीका—योगी यदि छः मास इस बंधका अभ्यास करे तो निश्चय मृत्युको जीतलेगा और उसका जठरा-

नल विशेष प्रज्वलित होगा और रसकी वृद्धि उत्पन्न होगी ॥ ७५ ॥

मूलम्-अनेन सुतरां सिद्धिर्विग्रहस्य प्रजायते ॥ रोगाणां संक्षयश्चापि योगिनो भवति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

टीका-इस उड्डियानबंधके प्रभावसे योगीका शरीर आपही सिद्ध हो जायगा अर्थात् अमर होजायगा और सर्व रोगोंका निश्चय क्षय होजायगा ॥ ७६ ॥

मूलम्-गुरोर्लब्ध्वा प्रयत्नेन साधयेत्तु विचक्षणः ॥ निर्जने सुस्थिते देशे बन्धं परमदुर्लभम् ॥ ७७ ॥

टीका-गुरुसे यत्नपूर्वक इस परमदुर्लभ बन्धको लाभ करके बुद्धिमान् साधक एकांतस्थानमें स्वस्थचित्त होके साधन करे ॥ ७७ ॥

अथ वज्रोली मुद्रा।

मूलम्-वज्रोलीं कथयिष्यामि संसारध्वान्तनाशिनीम् ॥ स्वभक्तेभ्यः समासेन गुह्याद्गुह्यतमामपि ॥ ७८ ॥

टीका-हे देवी! संसारतमनाशिनी परमगोपनीय वज्रोली मुद्रा भक्तलोगोंके प्रति हम कहते हैं ॥ ७८ ॥

मूलम्-स्वेच्छया वर्तमानोपि योगोक्तनियमैर्विना ॥ मुक्तो भवति गार्हस्थो वज्रोल्यभ्यासयोगतः ॥ ७९ ॥

टीका-गृहस्थ अपनी इच्छापूर्वक गृहमें भोग करेगा और योगमें जो नियम कहा है उसके विना इस वज्रोलीमुद्राके योग अभ्याससे मुक्त होजायगा॥७९॥

मूलम्-वज्रोल्यभ्यासयोगोऽयं भोगयुक्तेपि मुक्तिदः ॥ तस्मादतिप्रयत्नेन कर्तव्यो योगिभिः सदा ॥ ८० ॥

टीका-यह वज्रोलीका योग अभ्यास भोगयुक्त मनुष्योंके प्रति मुक्तिका दाता है इसकारणसे अतियत्न करके सर्वदा योगीको अभ्यास करना उचितहै॥८०॥

मूलम्-आदौ रजः स्त्रियो योन्या यत्नेन विधिवत्सुधीः ॥ आकुंच्य लिंगनालेन स्वशरीरे प्रवेशयेत् ॥ ८१ ॥ स्वकं बिंदुञ्च सम्बन्ध्य लिंगचालनमाचरेत् ॥ दैवाच्चलति चेदूर्ध्वं निबद्धो योनिमुद्रया ॥ ८२ ॥ वाममार्गेऽपि तद्बिन्दुं नीत्वा लिङ्गं निवारयेत् ॥ क्षणमात्रं योनितो यः पुमांश्चालन-

माचरेत् ॥ ८३ ॥ गुरूपदेशतो योगी हुंहु-ङ्कारेण योनितः ॥ अपानवायुमाकुंच्य बलादाकृष्य तद्रजः ॥ ८४ ॥

टीका—प्रथम बुद्धिमान् साधक यत्न करके विधान-पूर्वक स्त्रीके योनिसे रजको लिङ्गनालमें आकर्षण क-रके अपनें शरीरमें प्रवेश करे और अपने बिन्दुके नि-रोध करके लिङ्ग चालन करे यदि दैवात् बिन्दु अपने स्थानसे चले तो योनिमुद्रासे निरोध करके ऊपरको आकर्षण करे और उस बिन्दुको वामभागमें स्थित करके क्षणमात्र लिङ्गचालन निवारण करे फिर गुरूपदे-शद्वारा योगी हुंहुंकार शब्द उच्चारणपूर्वक योनिमें लिङ्गचालन करे और बलसे अपानवायुको आकुञ्चन करके स्त्रीके रजको आकर्षण करे इसको वज्रोली मुद्रा कहते हैं ॥८१॥८२॥८३॥८४॥

मूलम्—अनेन विधिना योगी क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ॥ गव्यभुक्कुरुते योगी गुरुपा-दाब्जपूर्वकः ॥ ८५ ॥

टीका—इस विधानसे योगीको शीघ्र योग सिद्ध होगा और गुरुपादपद्मपूजक योगी शरीरस्थ अमृत-पान करेगा ॥ ८५ ॥

मूलम्-बिन्दुर्विधुमयो ज्ञेयो रजः सूर्यमय-
स्तथा ॥ उभयोर्मेलनं कार्यं स्वशरीरे
प्रवेशयेत् ॥ ८६ ॥

टीका-बिन्दुरूपी चन्द्र और रजरूपी सूर्य यह जानकर दोनोंका सम्बन्ध करके अपने शरीरमें प्रवेश करना उचित है ॥८६॥

मूलम्-अहं बिन्दूरजः शक्तिरुभयोर्मेलनं
यदा ॥ योगिनां साधनावस्था भवेद्दिव्यं
वपुस्तदा ॥ ८७ ॥

टीका-यदि शिवरूपी बिन्दु और रजरूपी शक्ति यह दोनोंका सम्बन्ध होगा तब योगीका साधनसे दिव्य शरीर अर्थात् देवतोंके समान शरीर होगा तात्पर्य यह है कि, शिवशक्ति अर्थात् माया ईश्वरके सम्बन्ध वा मायाको ईश्वरमें लय करनेसे जिसको अध्यारोप अपवाद कहतेहैं योगीका मोक्ष होताहै अभिप्राय यह है कि, रज बिन्दुका सम्बन्ध जिस साधकको सिद्ध होजाताहै वह मुक्त है ॥ ८७ ॥

मूलम्-मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिंदुधा-
रणे ॥ तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिंदुधा-
रणम् ॥ ८८ ॥

टीका-बिन्दुपात होनेसे मृत्यु होती है और बिन्दुके धारणसे प्राणी जीवताहै इस कारणसे यत्नसे बिन्दुको धारण रखना उचित है ॥८८॥

मूलम्-जायते म्रियते लोके बिन्दुना नात्र संशयः॥ एतज्ज्ञात्वा सदा योगी बिन्दुधारणमाचरेत् ॥ ८९ ॥

टीका-प्राणीका जन्म मरण बिन्दुसे होताहै इसमें संशय नहीं है. इस हेतुसे इसको विचारके योगीको उचित है कि, बिन्दुको सर्वदा धारण रक्खें ॥८९॥

मूलम्-सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ॥ यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशो भवेत् ॥ ९० ॥

टीका-हे पार्वती! यत्नपूर्वक बिन्दुके सिद्ध होनेसे संसारमें क्या नहीं सिद्ध होसक्ता अर्थात् सब सिद्ध हो सक्ताहै इसीके प्रसादसे हमारी ऐसी महिमा है॥९०॥

मूलम्-बिन्दुः करोति सर्वेषां सुखं दुःखञ्च संस्थितः॥ संसारिणां विमूढानां जरामरणशालिनाम् ॥९१॥अयं च शांकरो योगो योगिनामुत्तमोत्तमः ॥ ९२ ॥

टीका-बिन्दु संसारी मनुष्योंका सुख और दुःखका

कारण है और मूढलोगोंके मूढताका और जरामरण-शील लोगोंका अर्थात् सबका यही बिन्दु हेतु है योगी लोगोंके प्रति यह हमारा उत्तम योग है ॥११॥१२॥

मूलम्-अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति भोगयुक्तोऽपि मानवः॥ सकलः साधितार्थोऽपि सिद्धो भवति भूतले॥ १३॥

टीका-भोगयुक्त मनुष्योंकोभी अभ्याससे सिद्धि प्राप्त होती हैं और सकल वांछितफल संसारमें सिद्ध होजाते हैं ॥१३॥

मूलम्-भुक्त्वा भोगानशेषान् वै योगेनानेन निश्चितम्॥ अनेन सकला सिद्धिर्योगिनां भवति ध्रुवम्॥ सुखभोगेन महता तस्मा-देनं समभ्यसेत्॥ १४॥

टीका-इस योग अभ्यासद्वारा निश्चय अशेषभोग भोगनेसे सुखी होगा और योगीलोगोंको इस वज्रोलीमुद्रासे सकल सिद्धी अवश्य प्राप्तहोती हैं और महानसुख भोगते हुए यह साधना सिद्ध होगी इस लिये इसका अभ्यास करना उचितहै ॥ १४ ॥

मूलम्-सहजोल्यमरोली च वज्रोल्या भेदतो भवेत् ॥येन केन प्रकारेण बिन्दुं योगी प्रधारयेत् ॥ १५॥

टीका-वज्रोलीके भेदसे सहजोली और अमरोली मुद्राकी संज्ञा है योगीको उचित है कि सवप्रकारसे विन्दुको धारण करे ॥ ९५ ॥

मूलम्-दैवाच्चलति चेद्वेगे मेलनं चन्द्रसूर्ययोः ॥ अमरोलिरियं प्रोक्ता लिंगनालेन शोषयेत् ॥ ९६ ॥

टीका-यदि हठात् वेगवश विन्दु चले और रजविन्दुका सम्बन्ध होजाय तो इसको अमरोली कहते हैं परंतु लिङ्गनालद्वारा रजविन्दु दोनोंको शोषण करे ॥ ९६ ॥

मूलम्-गतं विन्दुं स्वकं योगी वन्धयेद्योनिमुद्रया ॥ सहजोलिरियं प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ९७ ॥

टीका-निजविन्दु चलायमान होय तो योगी योनिमुद्राके वन्धसे अवरोध करे इसको सहजोली कहते हैं यह सर्वतन्त्रों करके गोपनीय है ॥ ९७ ॥

मूलम्-संज्ञाभेदाद्भवेद्भेदः कार्यं तुल्यगतिर्यदि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साध्यते योगिभिः सदा ॥ ९८ ॥

टीका-यदि कार्य एक समान है परन्तु संज्ञासे अमरोली और सहजोली दो भेद भया है इस हेतुसे

योगीको उचित है कि, यह दोनों अमरोली और सहजोलीका यत्नपूर्वक सर्वदा साधन करे ॥ ९८ ॥

मूलम्-अयं योगो मया प्रोक्तो भक्तानां स्नेहतः प्रिये ॥ गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्यचित् ॥ ९९ ॥

टीका-हे प्रिये पार्वती ! हम भक्तोंपर प्रेम करके यह योग जो कहा है यत्नपूर्वक गोपनीय है सामान्य मनुष्यको कदापि देना उचित नहीं है ॥ ९९ ॥

मूलम्-एतद्गुह्यतमं गुह्यं न भूतं न भविष्यति ॥ तस्मादेतत्प्रयत्नेन गोपनीयं सदा बुधैः ॥ १०० ॥

टीका-इस वज्रोलीमुद्रासे अधिक गोपनीय न कुछ भया है न होगा. इसकारणसे बुद्धिमान् साधकको यत्नपूर्वक इसको गोप्य रखना उचित है ॥ १०० ॥

मूलम्-स्वमूत्रोत्सर्गकाले यो बलादाकृष्य वायुना ॥ स्तोकं स्तोकं त्यजेन्मूत्रमूर्ध्वमाकृष्य तत्पुनः ॥१०१॥ गुरूपदिष्टमार्गेण त्य यः सम चरेत् ॥ बिन्दुसिद्धिर्भवेत्तस्य महासिद्धिप्रदायिका ॥ १०२ ॥

टीका-गुरुके उपदेशपूर्वक सर्वदा मूत्रत्यागनेके समय बलकरके वायुसे आकर्षणपूर्वक थोडा थोडा मूत्र त्यागकरे फिर ऊपरको आकर्षण करे तो उसका बिन्दु सिद्ध होजायगा यह बिन्दुकी सिद्धि महासिद्धीकी दाताहै अर्थात् परमपदको प्राप्त करतीहै॥१०१॥१०२

मूलम्-षण्मासमभ्यसेद्यो वै प्रत्यहं गुरुशिक्षया ॥ शतांगनाविभोगेपितस्य बिन्दुर्न नश्यति ॥ १०३ ॥

टीका-गुरुके शिक्षापूर्वक योगी यदि छः मास नित्य इसका अभ्यास करे तो शत स्त्रीसे भोग करेगा तो भी उसका बिन्दुपात न होगा ॥ १०३ ॥

मूलम्-सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्ध्यति पार्वति ॥ ईशत्वं यत्प्रसादेन ममापि दुर्लभं भवेत् ॥ १०४ ॥

टीका-हे पार्वती ! जब महायत्नसे बिन्दु सिद्ध होजायगा तब क्या नहीं सिद्ध होगा अर्थात् सब सिद्ध होजायगा इसके प्रसादसे यह दुर्लभ ईशत्व हमको प्राप्त भयाहै ॥ १०४ ॥

अथ शक्तिचालनमुद्रा ।

मूलम्-आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्ड-

लीं दृढाम् ॥ अपानवायुमारुह्य बलादाकृ-
ष्य बुद्धिमान् ॥ १०५ ॥ शक्तिचालनमु-
द्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ १०६ ॥

टीका-आधारकमलमें घोर निद्रित कुण्डलिनीको बुद्धिमान् अपानवायुपर आरूढ होके आकर्षणपूर्वक हठात् चलावे अर्थात् भ्रमावे यह शक्तिचालनमुद्रा सर्वशक्तिकी दाता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मूलम्-शक्तिचालनमेवं हि प्रत्यहं यः स-
माचरेत् ॥ आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य रोगाणां
च विनाशनम् ॥ १०७ ॥

टीका-यह शक्तिचालनमुद्रा जो प्रतिदिन करे तो उसके आयुकी वृद्धी होगी और सर्वरोगोंका इस मुद्राके प्रभावसे नाश होजायगा ॥ १०७ ॥

मूलम्-विहाय निद्रा भुजगी स्वयमूर्ध्वं
भवेत्खलु ॥ तस्मादभ्यासनं कार्यं योगि-
ना सिद्धिमिच्छता ॥ १०८ ॥

टीका-इस शक्तिचालनके साधनसे कुण्डलिनी निद्राको त्यागके आपही ऊर्ध्वगामी होजायगी यह निश्चय है. इस हेतुसे सिद्धिकी इच्छा करनेवाले योगीको उचित है कि, इसका अभ्यास करे ॥ १०८ ॥

मूलम्-यः करोति सदाभ्यासं शक्तिचाल-
नमुत्तमम् ॥ येन विग्रहसिद्धिः स्यादणि-
मादिगुणप्रदा ॥ गुरूपदेशविधिना तस्य
मृत्युभयं कुतः ॥ १०९ ॥

टीका-यदि इस उत्तमशक्तिचालनमुद्राका सदा अभ्यासकरे तो उसका शरीर सिद्ध अर्थात् अमर होजायगा और यह मुद्रा अणिमादिक सिद्धिकी दाता है. गुरुके उपदेशपूर्वक विधानसे जो इसका अभ्यास करे तो उसको मृत्युका भय नहीं है ॥१०९॥

मूलम्-मुहूर्तद्वयपर्यन्तं विधिना शक्ति-
चालनम् ॥११०॥ यः करोति प्रयत्नेन त-
स्य सिद्धिरदूरतः ॥ युक्तासनेन कर्तव्यं
योगिभिः शक्तिचालनम् ॥ १११ ॥

टीका-जो विधानपूर्वक यत्नसे यदि दो मुहूर्त पर्यंत शक्ति चालन करे तो उसको सर्वसिद्धिकी प्राप्ति होगी योगीको उचित है की गुरुके उपदेशानुसार योगासनसे युक्त होके शक्तिचालनका अभ्यास करे ॥११०॥१११॥

मूलम्-एतत्सुमुद्रादशकं न भूतं न भविष्य-
ति ॥ एकैकाभ्यासने सिद्धिः सिद्धा भव-
ति नान्यथा ॥ ११२ ॥

टीका—हे पार्वती ! यह दशमुद्रा जो हमने कहाहै इसके समान न कुछ भया है न होगा इसके एक एकके अभ्यास सिद्ध होनेसे साधक सिद्ध होजायगा॥ ११२॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे मुद्राकथनं नाम चतुर्थपटलः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमः पटलः ।

मूलम्—श्रीदेव्युवाच ॥ ब्रूहि मे वाक्यमीशान परमार्थधियं प्रति ॥ ये विघ्नाः सन्ति लोकानां वद मे प्रिय शङ्कर ॥ १ ॥

टीका—श्रीपार्वतीजी कहतीहैं कि हे ईश्वर ! हे प्रिय शंकर योगाभ्यासी लोगोंके प्रति जो विघ्न संसारमें हैं सो भक्तोंपर कृपा करके हमको कहो ॥ १ ॥

मूलम्—ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा विघ्नाः स्थिताः सदा ॥ मुक्तिं प्रति नराणाञ्च भोगः परमबन्धनः ॥ २ ॥

टीका—श्रीईश्वर कहते हैं कि हे देवी। योगसाधनमें जो विघ्न हैं सो हम कहते हैं सुनो मनुष्योंके मुक्तिके प्रति भोग परमबन्धन है ॥ २ ॥

अथ भोगरूपयोगविघ्नविद्याकथनम् ।

मूलम्—नारी शय्यासनं वस्त्रं धनमस्य विड-

म्बनम् ॥ ताम्बूलभक्षयानानि राज्यैश्वर्यविभूतयः ॥३॥ हैमं रौप्यं तथा ताम्रं रत्नञ्चागुरुधेनवः ॥ पाण्डित्यं वेदशास्त्राणि नृत्यं गीतं विभूषणम् ॥ ४ ॥ वंशी वीणा मृदङ्गाश्च गजेंद्रश्चाश्ववाहनम् ॥ दारापत्यानि विषया विघ्ना एते प्रकीर्तिताः ॥ भोगरूपा इमे विघ्ना धर्मरूपानिमाञ्छृणु ॥ ५ ॥

टीका—नारीसंसर्ग शय्या उत्तम आसन वस्त्र धन यह सब मोक्षके प्रति विडम्बना हैं ताम्बूलसेवन रथ शिबिका आदि सवारी राजऐश्वर्य भोग स्वर्ण रजत ताम्र अनेक प्रकारके रत्न गोधन आदिका संग्रह पाण्डित्य करना वेदशास्त्रमें तर्क करना नृत्य गीतभूषण वंशी वीणा मृदङ्गादिक वाद्य बजाना गज अश्व आदि वाहन स्त्री पुत्र केवल गुरुकी सेवा छोड़के हे पार्वती! यह जो कहा है सो भोगरूप विघ्न है अब धर्मरूप विघ्न कहतेहैं श्रवण करो ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ धर्मरूपयोगविघ्नकथनम् ।

मूलम्-स्नानं पूजाविधिर्होमं तथा मोक्षमयी स्थितिः ॥ व्रतोपवासनियममौनमिन्द्रियनिग्रहः ॥६॥ ध्येयो ध्यानं तथा

मन्त्रो दानं ख्यातिर्दिशासु च॥ वापीकूप-
तडागादिप्रासादारामकल्पना ॥७॥ यज्ञं
चान्द्रायणं कृच्छ्रं तीर्थानि विविधानि च॥
दृश्यन्ते च इमे विघ्ना धर्मरूपेण सं-
स्थिताः ॥८॥

टीका-स्नानविधि पूजा होम और सुखपूर्वक स्थि-
ति व्रत उपवास नियम मौन इन्द्रियनिग्रह ध्येय कि-
सीका ध्यान करना मन्त्र जप दान सर्वत्र प्रसिद्ध हो-
ना बावडी कूप तालाब मंदिर बगीचाआदिक बन-
वाना यज्ञ करना पापक्षयके हेतु चांद्रायण कृच्छ्र व्रत
करना तीर्थोंमें भ्रमण करना यह सब धर्मरूप विघ्न
हैं ॥६॥७॥८॥

अथ ज्ञानरूपविघ्नकथनम् ।

मूलम्-यत्तु विघ्नं भवेज्ज्ञानं कथयामि वरा-
नने॥९॥ गोमुखं स्वासनं कृत्वा धौति-
प्रक्षालनं च तत् ॥ नाडीसञ्चारविज्ञानं
प्रत्याहारनिरोधनम्॥१०॥ कुक्षिसंचालनं
क्षिप्रं प्रवेश इन्द्रियाध्वना ॥ नाडीकर्मा-
णि कल्याणि भोजनं श्रूयतां मम॥११॥

टीका-हे देवी! हे वरानने! अब ज्ञानरूप विघ्न कहतेहैं

सुनो—अन्तः शुद्धिके अर्थ गोमुखके सदृश वस्त्र भक्षण करके तब धौति प्रक्षालन करना अर्थात् धौतियोग करना नाडीचालनका ज्ञान वायुका प्रत्याहार निरोध करना कुण्डलिनीके बोधार्थ उदरको भ्रमावना इंद्रिय-द्वारा शीघ्र प्रवेश नाडी कर्म अर्थात् नाडीशुद्धिके हेतु आहारीय विचार यह सब ज्ञानरूप विघ्न हैं हे देवी! कल्याणी! नाडीशुद्धिके अर्थ जो भोजनविधि है सो हम कहते हैं सुनो ॥९॥१०॥११॥

मूलम्—नवधातुरसं छिन्धि शुण्ठिकास्ता-
डयेत्पुनः॥ एककालं समाधिः स्याल्लि-
गभूतमिदं शृणु ॥ १२ ॥

टीका—नवीन रससहित भोजन वस्तु और शुण्ठी चूर्ण भोजन करे इससे शीघ्र समाधि हो जायगी हे देवी! अब उसका चिह्न कहते हैं सुनो ॥ १२ ॥

मूलम्—सङ्गमं गच्छ साधूनां सङ्कोचं भज
दुर्जनात्॥ प्रवेशनिर्गमे वायोर्गुरुलक्षं
विलोकयेत ॥ १३ ॥

टीका—साधुके संगकी अभिलाषा और दुर्जनसे अलग रहनेका विचार रखना और वायुके प्रवेश निर्गममें और वायुके निरोध समय मात्रासे गुरुलघुके विचारार्थ संख्या करना ॥ १३ ॥

मूलम्-पिण्डस्थं रूपसंस्थञ्च रूपस्थं रूपवर्जितम् ॥ ब्रह्मैतस्मिन्मतावस्था हृदयञ्च प्रशाम्यति ॥ इत्येते कथिता विघ्ना ज्ञानरूपे व्यवस्थिताः ॥ १४ ॥

टीका-शरीरस्थरूपका विचार रखना और रूप कुरूपका निर्णय करना और यह जगत् ब्रह्म है ऐसे विचारसे त्हृदयमें स्थिरता रखना. हे पार्वती ! यह जो कहा है सो सब ज्ञानरूप विघ्न हैं ॥ १४ ॥

अथ चतुर्विधयोगकथनम् ।

मूलम्-मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगस्तृतीयकः ॥ चतुर्थो राजयोगः स्यात्स द्विधा भाववर्जितः ॥ १५ ॥

टीका-योग चार प्रकारका है-मन्त्रयोग, हठयोग और तीसरा लययोग और चौथा राजयोग है यह राजयोग द्वैतभावसे रहित है अर्थात् राजयोग सिद्धहो जानेसे जीव ईश्वरमें लय होजाता है और कुछ बोध नहीं होता ॥ १५ ॥

मूलम्-चतुर्धा साधको ज्ञेयो मृदुमध्याधिमात्रकाः ॥ अधिमात्रतमः श्रेष्ठो भवाब्धौ लंघनक्षमः ॥ १६ ॥

टीका-यह योगचतुष्टयके साधकभी चार प्रकारके होते हैं अर्थात् मृदु मध्यम अधिमात्र और अधिमात्रतम यह अधिमात्रतम साधक सबमें श्रेष्ठ है एही साधक संसाररूपी समुद्रके पार होनेमें समर्थ होताहै १६॥

अथ मृदुसाधकलक्षणम् ।

मूलम्-मन्दोत्साही सुसंमूढो व्याधिस्थो गुरुदूषकः ॥ लोभी पापमतिश्चैव बह्वाशी वनिताश्रयः ॥ १७ ॥ चपलः कातरो रोगी पराधीनोऽतिनिष्ठुरः ॥ मन्दाचारो मन्दवीर्यो ज्ञातव्यो मृदुमानवः ॥ १८ ॥ द्वादशाब्दे भवेत्सिद्धिरेतस्य यत्नतः परम् ॥ मन्त्रयोगाधिकारी स ज्ञातव्यो गुरुणा ध्रुवम् ॥ १९ ॥

टीका-अब मृदुसाधकलक्षण कहते हैं मन्द उत्साही मूढचित्त व्याधिग्रसित गुरुनिन्दक लोभी जिसकी सर्वदा पापबुद्धि रहै बहुत भोजन करनेवाला स्त्रीके वशमें हो चञ्चल हो कातर हो रोगी हो पराधीन हो कठोर बोलनेवाला हो जिसके मन्द कर्म हों मंदवीर्यवाला हो ऐसे पुरुषको मृदु मानव कहते हैं यह मन्त्रयोगका अधिकारी है यत्नकरनेसे और गुरुकी कृपासे इसको भी बारह वर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

मूलम्-समबुद्धिः क्षमायुक्तः पुण्यकांक्षी प्रियंवदः ॥ मध्यस्थः सर्वकार्येषु सामान्यः स्यान्न संशयः ॥२०॥ एतज्ज्ञात्वैव गुरुभिर्दीयते मुक्तितो लयः ॥ २१ ॥

टीका-अब मध्यसाधकलक्षण कहतेहैं-सामान्य बुद्धि हो क्षमावान हो पुण्यकर्म करनेमें इच्छा रखता हो प्रिय बोलता हो सर्वकार्यमें मध्यस्थ रहताहो अर्थात् न हर्ष न विषाद इसको मध्यसाधक कहतेहैं यह निश्चय है गुरु इसको विचारके मुक्तिमार्ग जो लययोग है उसका उपदेश करे ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ अधिमात्रसाधकलक्षणम्।

मूलम्-स्थिरबुद्धिर्लये युक्तः स्वाधीनो वीर्यवानपि ॥ महाशयो दयायुक्तः क्षमावान् सत्यवानपि ॥ २२ ॥ शूरो वयःस्थः श्रद्धावान् गुरुपादाब्जपूजकः ॥ योगाभ्यासरतश्चैव ज्ञातव्यश्चाधिमात्रकः ॥ २३ ॥ एतस्य सिद्धिः षड्वर्षे भवेदभ्यासयोगतः ॥ एतस्मै दीयते धीरो हठयोगश्च साङ्गतः ॥ २४ ॥

टीका--अब अधिमात्र साधक लक्षण कहतेहैं स्थिर बुद्धि हो लययोगमें समर्थहो स्वतन्त्र हो अर्थात् किसीके

आधीन न हो वीर्यवान हो महाशय हो दयावान हो क्षमावान हो सत्यवादी हो शूर हो समाधियोगमें श्रद्धा हो गुरुपदपद्मपूजक हो योगाभ्यासरत हो ऐसे गुणवाले पुरुषको अधिमात्र कहतेहैं योगाभ्याससे ऐसे पुरुषको छः वर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी. गुरुको उचित है कि, ऐसे धीर पुरुषको अङ्गसहित हठयोगका उपदेश करे ॥२२॥२३॥२४॥

अथ अधिमात्रतमसाधकलक्षणम् ।

मूलम्–महावीर्यान्वितोत्साही मनोज्ञः शौर्यवानपि ॥शास्त्रज्ञोऽभ्यासशीलश्च निर्मोहश्च निराकुलः ॥२५॥ नवयौवनसम्पन्नो मिताहारी जितेंद्रियः ॥ निर्भयश्च शुचिर्दक्षो दाता सर्वजनाश्रयः॥२६॥अधिकारी स्थिरो धीमान् यथेच्छावस्थितः क्षमी ॥ सुशीलो धर्मचारी च गुप्तचेष्टः प्रियंवदः ॥ २७ ॥ शास्त्रविश्वाससम्पन्नो देवता गुरुपूजकः ॥ जनसंगविरक्तश्च महाव्याधि विवर्जितः ॥ २८ ॥ अधिमात्रतमो ज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः ॥ त्रिभिः सँव्वत्सरैः सिद्धिरेतस्य नात्र संशयः ॥ सर्वयोगाधिकारी स नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥

टीका–महावीर्यवान् उत्साहयुक्त स्वरूपवान् शूरतासम्पन्न शास्त्रज्ञ अभ्यासशील अर्थात् श्रुतिधर मोहसे हीन आकुलतारहित अर्थात् सावधान नवीन यौवनसम्पन्न अर्थात् तरुण प्रमाणभोजी जितेन्द्रिय निर्भय पवित्रआचार सर्वकर्ममें निपुण दानशील शरणागतपालक स्थिरचित्त बुद्धिमान् सन्तोषयुक्त क्षमावान् शीलवान् धार्मिक कर्मोंको गोप्य रखनेवाला प्रियसत्यवादी शास्त्रमें विश्वास देवता और गुरुपूजक जनसङ्गरहित महाव्याधिरहित ऐसे गुण जिसमें हों वह अधिमात्रतम है और सर्व योगका साधक है इसको तीन वर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी इसमें संशय नहीं है. यह सर्वयोगका अधिकारी है ऐसे पुरुषको गुरु समस्त योगका उपदेश करदें इसमें विचारका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ प्रतीकोपासनम् ।

मूलम्–प्रतीकोपासना कार्या दृष्टादृष्टफलप्रदा ॥ पुनाति दर्शनादत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ ३० ॥

टीका–अब प्रतीकउपासना कहतेहैं प्रतीकउपासनासे दृष्टादृष्टफल लाभ होताहै और उसके दर्शनसे मनुष्य पवित्र होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥

मूलम्–गाढातपे स्वप्रतिविम्बितेश्वरं निरी-

क्ष्य विस्फारितलोचनद्वयम् ॥ यदा नभः पश्यति स्वप्रतीकं नभोङ्गणे तत्क्षणमेव पश्यति ॥ ३१ ॥

टीका-गाढआतपमें अर्थात् गहरेधूपमें स्वईश्वरका प्रतिबिम्ब नेत्रस्थिरकरके देखे जब अपने छायाका प्रतिबिम्ब शून्यमें देखपडे तब ऊपर आकाशमें अपना प्रतिबिम्ब अवश्य देखेगा ॥ ३१ ॥

मूलम्-प्रत्यहं पश्यते यो वै स्वप्रतीकं नभोङ्गणे ॥ आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य न मृत्युः स्यात्कदाचन ॥ ३२ ॥

टीका-जो नित्य आकाशमें स्वप्रतीक अर्थात् अपना प्रतिबिम्ब देखेगा उसके आयुकी वृद्धि होगी और उसकी मृत्यु कभी न होगी अर्थात चिरंजीवी हो जायगा ॥ ३२ ॥

मूलम्-यदा पश्यति सम्पूर्णं स्वप्रतीकं नभोङ्गणे ॥ तदा जयं सभायाञ्च युद्धे निर्जित्य सञ्चरेत् ॥ ३३ ॥

टीका-जब सम्पूर्ण अपना प्रतिबिम्ब आकाशमें देखे तब सभामें उसकी जय होय और युद्धमें शत्रुको जीतलेगा ॥ ३३ ॥

मूलम्—यः करोति सदाभ्यासं चात्मानं वन्दते परम् ॥ पूर्णानन्दैकपुरुषं स्वप्रतीकप्रसादतः ॥ ३४ ॥

टीका—जो सर्वदा स्वप्रतीक उपासनाका अभ्यास करे तो उसको आत्माकी प्राप्ति होगी और उसी स्वप्रतीकके प्रसादसे पूर्णानन्द स्वरूप अर्थात् आत्माका दर्शन होगा. तात्पर्य यह है कि, जब हृदयाकाशमें अपने स्वरूपका अनुभव होगा तब आत्माकी परम ज्योतिका प्रकाश होगा ॥ ३४ ॥

मूलम्—यात्राकाले विवाहे च शुभे कर्मणि सङ्कटे ॥ पापक्षये पुण्यवृद्धौ प्रतीकोपासनञ्चरेत् ॥ ३५ ॥

टीका—यात्राकालमें और विवाहके समयमें और शुभकर्ममें और पापक्षयमें और पुण्यवृद्धिके अर्थ स्वप्रतीक अर्थात् अपने प्रतिबिम्बका दर्शन करे तो सर्वदा कल्याण होगा ॥ ३५ ॥

मूलम्—निरन्तरकृताभ्यासादन्तरे पश्यति ध्रुवम् ॥ तदा मुक्तिमवाप्नोति योगी नियतमानसः ॥ ३६ ॥

टीका—सर्वदा प्रतीकोपासनके अभ्यास करनेसे निश्चय हृदयाकाशमें अपना प्रतिबिंब भान होगा तब निश्चयआत्मा योगीको मुक्ति प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥

मूलम्—अंगुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां-
द्विलोचने ॥ नासारन्ध्रे च मध्याभ्याम-
नामाभ्यां मुखं दृढम् ॥ ३७ ॥ निरुध्य
मारुतं योगी यदैव कुरुते भृशम् ॥ तदा
तत्क्षणमात्मानं ज्योतीरूपं स पश्यति ३८

टीका—दोनों अंगुष्ठसे दोनों कर्ण बंद करे और दोनों तर्जनीसे दोनों नेत्रोंको बंद करे और दोनों मध्यमा अंगुलीसे दोनों नासारंध्रको बंद करे और दोनों अनामिका अंगुली और कनिष्ठासे मुखको बंद करे यदि इसप्रकार योगी वायुको निरोध करके इसका वारंवार अभ्यास करे तो आत्मा ज्योतिस्वरूपका त्हदयाकाशमें भान होगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मूलम्—तत्तेजो दृश्यते येन क्षणमात्रं निरा-
कुलम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति
परमां गतिम् ॥ ३९ ॥

टीका—आत्माका यह परमतेज जो पुरुष स्थिरचित्त होके क्षणमात्रभी देखेगा वह सर्वपापसे मुक्त होके परमगतिको प्राप्तहोगा ॥ ३९ ॥

मूलम्—निरन्तरकृताभ्यासाद्योगी विगतक-
ल्मषः ॥ सर्वदेहादि विस्मृत्य तदभिन्नः
स्वयं गतः ॥ ४० ॥

टीका—निरंतर जो योगी शुद्धचित्त होके यह प्रती-

कोपासनाका अभ्यास करेगा वह सर्व देहादिकर्मसे रहित होके आत्मासे अभिन्न होजायगा अर्थात् आत्मास्वरूप होजायगा ॥ ४० ॥

मूलम्–यः करोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानवः ॥ स वै ब्रह्मविलीनः स्यात्पापकर्मरतो यदि ॥ ४१ ॥

टीका–जो मनुष्य गुप्ताचारसे इसका सर्वदा अभ्यास करताहै सो यदि पापकर्मरतभी हो तथापि उसका मोक्ष होगा ॥ ४१ ॥

मूलम्–गोपनीयः प्रयत्नेन सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ निर्वाणदायको लोके योगोयं मम वल्लभः ॥ नादः संजायते तस्य क्रमेणाभ्यासतश्च यः ॥ ४२ ॥

टीका–जो इसका अभ्यास करेगा उसको क्रमसे नाद उत्पन्न होगा. हे देवी! यह प्रतीकोपासना निर्वाण योगका दाता हैं इसहेतुसे हमको अतिप्रिय है यह शीघ्र फलदाता हैं इसको यत्नसे गोप्य रखना उचित है ॥ ४२ ॥

मूलम्–मत्तभृङ्गवेणुवीणासदृशः प्रथमोध्वनिः ॥ ४३ ॥ एवमभ्यासतः पश्चात्संसारध्वान्तनाशनम् ॥ घण्टानादसमः पश्चात्

ध्वनिर्मेघरवोपमः ॥ ४४ ॥ ध्वनौ तस्मिन्मनो दत्त्वा यदा तिष्ठति निर्भरः॥तदा संजायते तस्य लयस्य मम वल्लभे ॥४५॥

टीका–योगअभ्यासद्वारा प्रथम मत्त भ्रमरकी नाईं शब्द और वेणु और वीणाके समान शब्द उत्पन्न होगा इसी तरह संसारतम नाशक योगअभ्याससे फिर घंटानाद समान शब्द होगा. फिर मेघ गर्जनके समान ध्वनि होगी. हे प्रिये पार्वती ! उस ध्वनिमें यदि मन निश्चल स्थित हो जाय तब मोक्षका दाता लय उत्पन्न होगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

मूलम्–तत्र नादे यदा चित्तं रमते योगिनो भृशम् ॥ विस्मृत्य सकलं बाह्यं नादेन सह शाम्यति ॥ ४६ ॥

टीका–जब योगीका चित्त उस नादमें निरंतर रमण करेगा तब सकल विषयसे स्मरणरहित होके चित्त समाधिमें लय होजायगा ॥ ४६ ॥

मूलम्–एतदभ्यासयोगेन जित्वा सम्यग्गुणान्बहून् ॥ सर्वारम्भपरित्यागी चिदाकाशे विलीयते ॥ ४७ ॥

टीका–इसीप्रकार योग अभ्यासद्वारा सर्व गुणोंको जीतके और सब कार्योंके आरंभको त्यागके

योगी आनंदपूर्वक चैतन्यस्वरूप हृदयाकाशमें लय होजायगा ॥ ४७ ॥

मूलम्-नासनं सिद्धसदृशं न कुम्भसदृशं बलम् ॥ न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः ॥ ४८ ॥

टीका-हे देवी! सिद्धासनके समान कोई और आसन नहीं है और न कुम्भकके समान कोई बल है और न खेचरीके समान कोई मुद्रा है और न नादके समान कोई दूसरा लय है ॥ ४८ ॥

अथ मूलाधारपद्मविवरणम् ।

मूलम्-इदानीं कथयिष्यामि मुक्तस्यानुभवं प्रिये ॥ यज्ज्ञात्वा लभते मुक्तिं पापयुक्तोऽपि साधकः ॥ ४९ ॥

टीका-हे प्रिये पार्वती! अब मुक्तिका अनुभव तुमसे कहतेहैं जिसके ज्ञानसे पापयुक्त साधकभी मुक्तिलाभ करताहै ॥ ४९ ॥

मूलम्-समभ्यर्च्येश्वरं सम्यक्कृत्वा च योगमुत्तमम् ॥ गृह्णीयात्सुस्थितो भूत्वा गुरुं सन्तोष्य बुद्धिमान् ॥ ५० ॥

टीका-योगाकांक्षी साधक सम्यक्प्रकारसे ईश्वरकी पूजा करके स्वस्थ चित्तसे योगासन पर बैठके बुद्धिमा

न् गुरुको सर्व प्रकारसे प्रसन्न करके यह उत्तम योग ग्रहण करे ॥ ५० ॥

मूलम्-जीवादि सकलं वस्तु दत्त्वा योग-
विदं गुरुम् ॥ सन्तोष्यादिप्रयत्नेन योगोयं
गृह्यते बुधैः ॥ ५१ ॥

टीका-बुद्धिमान् साधक जीवादि सकल पदार्थ योगविद् गुरुके अर्पण करके उनके प्रसन्नतापूर्वक यत्न करके यह योग ग्रहण करते हैं ॥ ५१ ॥

मूलम्-विप्रान्संतोष्य मेधावी नानामं-
गलसंयुतः ॥ समालये शुचिर्भूत्वा गृह्णी-
याच्छुभमात्मनः ॥ ५२ ॥

टीका-योगग्रहणके समय बुद्धिमान् साधक ब्राह्मणको सन्तोष करके अर्थात् द्रव्यादिक प्रदानपूर्वक प्रसन्न करके अनेक आशीर्वाद श्रवण करके पवित्रतासे शिवमंदिरमें बैठके आत्माके अर्थ जो यह शुभयोग है इसको ग्रहणकरे ॥ ५२ ॥

मूलम्-संन्यस्यानेन विधिना प्राक्तनं
विग्रहादिकम् ॥ भूत्वा दिव्यवपुर्योगी
गृह्णीयाद्वक्ष्यमाणकम् ॥ ५३ ॥

टीका-साधक इस विधानसे पूर्व शरीर गुरुकी कृपासे त्यागके दिव्य शरीर होके जो आगे कहेंगे वह योग ग्रहण करे. तात्पर्य यह है कि, योगग्रहणके सम-

यसे साधकका शरीर दिव्य होजाताहै व्याधि और अज्ञानका शरीर नहीं रहजाता इस हेतुसे योगग्रहणके समय साधक यह चिंतनकरे कि; पूर्व शरीरको हमने त्यागके दिव्यशरीर धारण किया ॥ ५३ ॥

मूलम्-पद्मासनस्थितो योगी जनसंगविवर्जितः ॥ विज्ञाननाडीद्वितयमङ्गुलीभ्यां निरोधयेत् ॥ ५४ ॥

टीका-योगी संगरहित पद्मासनमें स्थित होके दोनों विज्ञाननाडी अर्थात् इडा और पिंगलाको दो अंगुलीसे निरोध करे ॥ ५४ ॥

मूलम्-सिद्धेस्तदाविर्भवति सुखरूपी निरञ्जनः ॥ तस्मिन्परिश्रमः कार्यो येन सिद्धो भवेत्खलु ॥ ५५ ॥

टीका-यह योग सिद्ध होनेसे साधकके ह्रदयमें सुखरूपी निरंजन परब्रह्म चैतन्यस्वरूपका प्रकाशहोगा इस हेतुसे यह योगमें साधकको परिश्रम कर्तव्य है, इससे निश्चय यह योग सिद्ध होजायगा ॥ ५५ ॥

मूलम्-यः करोति सदाभ्यासं तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥ वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य क्रमादेव न संशयः ॥ ५६ ॥

टीका-जो मनुष्य इस योगका सर्वदा अभ्यास करे-

गा उसको सर्वसिद्धि प्राप्त होगी और निश्चय आपही क्रमसे वायु सिद्ध होजायगा ॥ ५६ ॥

मूलम्—सकृद्यः कुरुते योगी पापौघं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ तस्य स्यान्मध्यमे वायोः प्रवेशो नात्र संशयः ॥ ५७ ॥

टीका—जो योगी प्रतिदिन एकवार यह अभ्यास करे तो उसके सर्व पापोंका नाश होजायगा और उसका प्राणवायु निश्चय सुषुम्णामें प्रवेश करेगा ॥ ५७ ॥

मूलम्—एतदभ्यासशीलो यः स योगी देवपूजितः ॥ अणिमादिगुणाँल्लब्ध्वा विचरेद्भुवनत्रये ॥ ५८ ॥

टीका—यह अभ्यासशील योगी देवतोंसे पूजित है और अणिमादिक सिद्धि लाभ करके तीनों लोकमें इच्छापूर्वक विचरेगा ॥ ५८ ॥

मूलम्—यो यथास्यानिलाभ्यासात्तद्भवेत्तस्य विग्रहः ॥तिष्ठेदात्मनि मेधावी संयुतः क्रीडते भृशम् ॥ ५९ ॥

टीका—जिस प्रकार वायुका अभ्यास करेगा उसी तरह साधकका शरीर सिद्ध हो जायगा और बुद्धिमान् पुरुष आत्मामें स्थितहोके सर्वदा क्रीडा करेगा॥५९॥

मूलम्—एतद्योगं परं गोप्यं न देयं यस्य

कस्यचित् ॥ यः प्रमाणैः समायुक्तस्तमेव कथ्यते ध्रुवम् ॥ ६० ॥

टीका-यह योग परमगोपनीय है अनधिकारीको कदापि देनेके योग्य नहीं है परन्तु प्रमाणयुक्त अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणयुक्त साधकको अवश्य देना उचित है ६० ॥

मूलम्-योगी पद्मासने तिष्ठत्कण्ठकूपे यदा स्मरन् ॥ जिह्वां कृत्वा तालुमूले क्षुत्पिपासा निवर्तते ॥ ६१ ॥

टीका-पद्मासनस्थित योगी जब कण्ठकूपका स्मरण अर्थात् उस स्थानमें मनको लय करके जिह्वाको तालुमूलमें स्थित करेगा तब क्षुधा और पिपासासे रहित हो जायगा ॥ ६१ ॥

मूलम्-कण्ठकूपादधः स्थाने कूर्मनाड्यस्ति शोभना ॥ तस्मिन् योगी मनो दत्त्वा चित्तस्थैर्यं लभेद्भृशम् ॥ ६२ ॥

टीका-कंठकूपके नीचे कूर्मनाडी शोभित है उस नाडीमें योगी मनको स्थिर करके अत्यंत चित्तकी स्थिरता पावेगा ॥ ६२ ॥

मूलम्-शिरःकपाले रुद्राक्षं विवरं चिन्तयेद्यदा ॥ तदा ज्योतिःप्रकाशः स्याद्विद्युत्पुञ्जसमप्रभः ॥ ६३ ॥ एतच्चिन्तनमात्रेणपा-

पानां संक्षयो भवेत् ॥ दुराचारोऽपि पुरुषो लभते परमं पदम् ॥ ६४ ॥

टीका--शिर कपालमें जो रुद्राक्ष विवर है उसमें यदि चिंतना करे तो विद्युत्पुञ्जके समान आत्मज्योतिका प्रकाश होगा और इसके चिन्तनमात्रसे योगीका सर्व पाप नष्ट होजायगा. यदि दुराचारमेंभी जो पुरुष आसक्त है वहभी परमगतिको प्राप्त होगा ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

मूलम्-अहर्निशं यदा चिन्तां तत्करोति विचक्षणः ॥ सिद्धानां दर्शनं तस्य भाषणञ्च भवेद्ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

टीका-जो बुद्धिमान् साधक रात्रि दिवस यह चिन्तवन करते हैं उनको सिद्धलोगोंका अवश्य दर्शन और उनसे भाषण होताहै ॥ ६५ ॥

मूलम्-तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् भुञ्जन् ध्यायेच्छून्यमहर्निशम् ॥ तदाकाशमयो योगी चिदाकाशे विलीयते ॥ ६६ ॥

टीका-जो पुरुष चलते बैठते सोते भोजन करते रात्रिदिवस यह ध्यान करते हैं सो आकाशस्वरूप योगी चिदाकाश अर्थात् परमात्मामें लय होजाते हैं ॥ ६६ ॥

मूलम्-एतज्ज्ञानं सदा कार्यं योगिना सिद्धिमिच्छता ॥ निरन्तरकृताभ्यासान्मम

तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ एतज्ज्ञानबलाद्योगी सर्वेषां वल्लभो भवेत् ॥ ६७ ॥

टीका-सिद्धिकांक्षी योगीको इस ध्यानका सर्वदा अभ्यास करना उचित है सर्वदा अभ्यास करनेसे हेपार्वती! हमारेतुल्य होजायगा निश्चय इस ज्ञानबलसे योगी सबको अर्थात् त्रैलोक्यको प्रिय होजाताहै ॥ ६७ ॥

मूलम्-सर्वान् भूतान् जयं कृत्वा निराशीरपरिग्रहः ॥ ६८॥ नासाग्रे दृश्यते येन पद्मासनगतेन वै ॥ मनसो मरणं तस्य खेचरत्वं प्रसिद्ध्यति॥ ६९ ॥

टीका-योगी सर्व भूतोंको जय करके और क्षुधा और इच्छाको जीतके पद्मासनसे स्थित होके जो नासाग्रमें देखता है उसका मन स्थिर होजाताहै तब खेचरत्व सिद्धहोताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मूलम्-ज्योतिः पश्यति योगीन्द्रः शुद्धं शुद्धाचलोपमम् ॥ तत्राभ्यासबलेनैव स्वयं तद्रक्षको भवेत् ॥ ७० ॥

टीका-शुद्ध अचलके समान परमज्योति योगी देखताहै तब अभ्यासबलसे आपही उसका रक्षक होताहै अर्थात् ज्योतिर्मय होता है ॥ ७० ॥

मूलम्-उत्तानशयने भूमौ सुप्त्वा ध्यायन्नि-

रन्तरम् ॥ सद्यः श्रमविनाशाय स्वयं योगी विचक्षणः ॥ ७१ ॥ शिरःपश्चात्तु भागस्य ध्याने मृत्युञ्जयो भवेत् ॥ भ्रूमध्ये दृष्टिमात्रेण ह्यपरः परिकीर्तितः ॥ ७२ ॥

टीका–बुद्धिमान् योगी भूमिसें उत्तानशयन करके निरन्तर ध्यान करे तो तत्काल आपही श्रमका नाश होजायगा और शिरके पृष्ठभागका ध्यान करनेसे योगी मृत्युका जीतनेवाला होजायगा और भ्रूके मध्यमें जो दृष्टिमात्रसे फल होताहै सो हे देवि ! हम पहले कह चुके हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

मूलम्–चतुर्विधस्य चान्नस्य रसस्त्रेधा विभज्यते ॥ तत्र सारतमो लिंगदेहस्य परिपोषकः ॥ ७३ ॥ सप्तधातुमयं पिण्डमेति पुष्णाति मध्यगः ॥ याति विण्मूत्ररूपेण तृतीयः सप्ततो बहिः ॥ ७४ ॥ आद्यभागद्वयं नाड्यः प्रोक्तास्ताः सकला अपि ॥ पोषयन्ति वपुर्वायुमापादतलमस्तकम् ॥ ७५ ॥

टीका–चार विधि अन्नभोजन करनेसे तीनप्रकारका रस उत्पन्न होताहै उसमें जो प्रथम सारभूत रस है

वह लिङ्गशरीरको पोषण करता है और जो दूसरा रस है वह सप्तधातुमय पिण्डको पोषण करताहै और तीसरा रस सप्तधातुके बाहर मल मूत्ररूप है पहिले जो दोभाग रस कहाहै वही सकल नाडी रूप है और पादसे लेकर मस्तकपर्यंत शरीरके वायुका पोषणकरते हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मूलम्—नाडीभिराभिः सर्वाभिर्वायुः सञ्चरते यदा॥तदैवान्नरसो देहे साम्येनेह प्रवर्त्तते ७६

टीका—जब सब नाडीके साथ वायु चलताहै तब अन्नका रस शरीरमें समभावसे प्रवृत्त होता है ॥ ७६ ॥

मूलम्—चतुर्दशानां तत्रेह व्यापारे मुख्यभागतः ॥ ता अनुग्रत्वहीनाश्च प्राणसञ्चारनाडिकाः ॥ ७७ ॥

टीका—सर्व नाडियोंमें पूर्वोक्त चौदह नाडी शरीरके मुख्य व्यापारको करतीहैं यह प्राण सञ्चार करनेवाली चौदह नाडीमें परस्पर कोई किसीसे न्यून अधिक नहीं है ॥ ७७ ॥

मूलम्—गुदाद्व्यंगुलतश्चोर्ध्वं मेढ्रैकांगुलतस्त्वधः ॥ एवञ्चास्ति समं कन्दं समंता चतुरंगुलम् ॥ ७८ ॥

टीका—गुदासे दो अङ्गुल ऊपर और मेढ्र अर्थात्

लिङ्गमूलसे एक अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तारकन्दका प्रमाण है ॥ ७८ ॥

मूलम्-पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा ॥ तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डली सदा ॥ ७९ ॥ संवेष्ट्य सकला नाडीः सार्द्धत्रिकुटिलाकृतिः ॥ मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णाविवरे स्थिता ॥ ८० ॥

टीका-गुदा और मेढ्रके मध्यमें जो योनि है वह पश्चिमाभिमुखी अर्थात् पीछेको मुख है उसी स्थानमें कन्दहै और उसी स्थानमें सर्वदा कुण्डलिनीकी स्थिति है यह कुण्डलिनी सकल नाडीको घेरके साढे तीन फेरा कुटिल आकृतिसे अपने मुखमें पुच्छको लेके सुषुम्णा विवरमें स्थित है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

मूलम्-सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया ॥ अहिवत्सन्धिसंस्थाना वाग्देवी वीजसंज्ञिका ॥ ८१ ॥

टीका-यह कुण्डलिनी सर्पके समान निद्रिता अपनी प्रभासे प्रकाशमान है और सर्पके सदृश संधिमें स्थित है और वाग्देवी है अर्थात् कुण्डलिनीहीसे वाक्य उच्चारण होताहै और बीज संज्ञक है अर्थात् संसारकी बीज है ॥ ८१ ॥

मूलम्-ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निर्मला स्वर्ण-

भास्वरा ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयप्रसूतिका ॥ ८२ ॥

टीका-यह कुण्डलिनी देवी ईश्वरकी शक्तिमें तप्त स्वर्णके समान निर्मल तेजप्रभा है और सत्त्व, रज, तम, यह तीनों गुणकी माता है ॥ ८२ ॥

मूलम्-तत्र बन्धूकपुष्पाभं कामबीजं प्रकीर्तितम् ॥ कलहेमसमं योगे प्रयुक्ताक्षररूपिणम् ॥ ८३ ॥

टीका-जिस स्थानमें कुण्डलिनी है उसी स्थानमें बन्धूकपुष्पके समान रक्तवर्ण कामबीजकी स्थिति कहीगई है वह कामबीज तप्तस्वर्णके समान स्वरूपयोगयुक्तद्वारा चिंतनीय है ॥ ८३ ॥

मूलम्-सुषुम्णापि च संश्लिष्टा बीजं तत्र वरं स्थितम् ॥ शरच्चंद्रनिभं तेजस्स्वयमेतत्फुरत्स्थितम् ॥ ८४॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ एतत्त्रयं मिलित्वैव देवी त्रिपुरभैरवी ॥ बीजसंज्ञं परंतेजस्तदेवपरिकीर्तितम् ॥ ८५ ॥

टीका-जिस स्थानमें कुण्डलिनी स्थित है सुषुम्णा उसी स्थानमें कामबीजके साथ स्थित है और वह बीज शरच्चन्द्रके समान प्रकाशमान तेज है और वह आपही कोटि सूर्यके समान प्रकाश और कोटिचंद्रके समान

शीतल है यह तीनों मिलके अर्थात् कुण्डलिनी सुषुम्णा, बीजकुण्डलिनीका नाम त्रिपुरभैरवी देवी है यह कुण्डलिनी परमतेजमानहै और इसकी बीजसंज्ञाहै ८४॥८५

मूलम्–क्रियाविज्ञानशक्तिभ्यां युतं यत्परितो भ्रमत् ॥८६॥ उत्तिष्ठद्विशतस्त्वम्भः सूक्ष्मं शोणशिखायुतम्॥ योनिस्थं तत्परं तेजः स्वयंभूलिंगसंज्ञितम् ॥ ८७ ॥

टीका–यह बीज क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिसे युक्त होके शरीरमें भ्रमण करताहै और कभी ऊर्ध्वगामी होताहै और कभी जलमें प्रवेश करताहै और सूक्ष्म प्रज्वलित अग्निके समान शिखायुत परमतेजवीर्यकी स्थिति योनिस्थानमें है और स्वयम्भू लिङ्गसंज्ञा है॥८६॥८७॥

मूलम्–आधारपद्ममेतद्धि योनिर्यस्यास्ति कन्दतः ॥ परिस्फुरद्वादिसान्तचतुर्वर्णं चतुर्दलम् ॥ ८८ ॥

टीका–यह जो कहाहै इसको आधारपद्म कहते हैं और इस पद्मके मूलमें योनिकी स्थितिहै यह पद्म परम प्रकाशमान व-से स-तक अर्थात् व-श-ष-स चारवर्ण और चारदल करके शोभित है ॥ ८८ ॥

मूलम्–कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसंगतम् ॥ द्विरण्डो यत्र सिद्धोस्ति

डाकिनी यत्र देवता ॥ ८९ ॥ तत्पद्ममध्यगा योनिस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता ॥ तस्याऊर्ध्वे स्फुरत्तेजः कामबीजं भ्रमन्मतम् ॥ ९० ॥ यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारे विचक्षणः ॥ तस्य स्याद्दार्दुरी सिद्धिर्भूमित्यागक्रमेण वै ॥ ९१ ॥

टीका-वह कमल कुलाभिध है अर्थात् कुलनाम है और स्वर्णके समान कांतिहै और स्वयंभूलिङ्गसे युक्त है और उस पद्ममें द्विरण्डनामक सिद्ध और डाकिनी देवता अधिष्ठात्री है और गणेश देवता है और उस पद्मके मध्यमें योनि है उस योनिमें कुण्डलिनीकी स्थिति है और उस कुण्डलिनीके ऊपर दीप्तिमान् तेजस्वरूप कामबीज भ्रमण करताहै जो बुद्धिमान् पुरुष इस मूलाधार पद्मका सर्वदा ध्यान करते हैं उनको दार्दुरी वृत्ति सिद्ध होती है और क्रमसे भूमिको त्यागके आकाशगमन करते हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

मूलम्-वपुषः कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्निविवर्धनम् ॥ आरोग्यञ्च पटुत्वञ्च सर्वज्ञत्वञ्च जायते ॥ ९२ ॥

टीका-यह ध्यान करनेसे शरीरमें उत्तम कांति होती है और जठराग्नि वर्धित होताहै और शरीर

आरोग्य रहताहै और पटुता और सर्वज्ञता अर्थात् सर्व वस्तुका ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ९२ ॥

मूलम्-भूतं भव्यं भविष्यच्च वेत्ति सर्वं सकारणम् ॥ अश्रुतान्यपि शास्त्राणि सरहस्यं वदेद्ध्रुवम् ॥ ९३ ॥

टीका-फिर भूत, भविष्य, वर्तमान तीनोंकाल और सर्व वस्तुके कारणका ज्ञान होताहै और जो शास्त्र कभी श्रवण नहीं कियाहै उसको रहस्यसहित व्याख्या करनेकी शक्ति निश्चय उत्पन्न होती है ॥ ९३ ॥

मूलम्-वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम् ॥ मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य जपादेव न संशयः ॥ ९४ ॥

टीका-योगीके मुखमें सर्वदा निरंतर सरस्वती देवी नृत्य करती है और योगीकी जपमात्रसे मन्त्रादिकी सिद्धि होतीहै इसमें संशय नहीं है ॥ ९४ ॥

मूलम्-जरामरणदुःखौघान्नाशयति गुरोर्वचः ॥ इदं ध्यानं सदा कार्यं पवनाभ्यासिना परम् ॥ ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ ९५ ॥

टीका-गुरुका वचन जरा मृत्यु आदि जो दुःखका समूह है उसको नाश करदेताहै पवनाभ्यासी साधकको

यह परमध्यान सर्वदा करनेके योग्य है ध्यानमात्रसे योगीन्द्र सर्वपापसे मुक्त होजाताहै ॥ ९५ ॥

मूलम्–मूलपद्मं यदा ध्यायेद्योगी स्वायम्भुलिङ्गकम् ॥ तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ९६ ॥

टीका–योगी जब मूलाधार पद्म स्वयम्भूलिङ्गसंयुक्तका ध्यान करे तो उसी क्षण निश्चय पापके समूहका नाश करदेगा ॥ ९६ ॥

मूलम्–यं यं कामयते चित्ते तं तं फलमवाप्नुयात् ॥ निरन्तरकृताभ्यासात्तं पश्यति विमुक्तिदम् ॥ ९७ ॥ बहिरभ्यन्तरे श्रेष्ठं पूजनीयं प्रयत्नतः ॥ ततः श्रेष्ठतमं ह्येतन्नान्यदस्ति मतं मम ॥ ९८ ॥

टीका–जो साधक मूलाधार पद्मका ध्यान करते हैं वह अपने चित्तमें जोजो वस्तुकी इच्छा करते हैं सो सो सब वस्तु उनको प्राप्त होती हैं और सर्वदा यत्नपूर्वक यह अभ्यास करनेसे बाहर भीतर श्रेष्ठ पूजनीय मुक्तिदायी परमात्माको देखते हैं हे पार्वति ! इससे श्रेष्ठतम दूसरा योग नहीं है यह हमारा मतहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

मूलम्–आत्मसंस्थं शिवं त्यक्त्वा बहिःस्थं यः समर्चयेत् ॥ हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य भ्रमते जीविताशया ॥ ९९ ॥

टीका-मनुष्य शरीरस्थ शिवको त्यागके बाहरके देवताको पूजते हैं जैसे हाथके पिंडको त्यागके जीवके रक्षार्थ अन्य पिंडके हेतु लोग भ्रमण करते हैं ॥ ९९॥

मूलम्-आत्मलिंगार्चनं कुर्यादनालस्यं दिने दिने ॥ तस्य स्यात्सकलासिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥ १००॥ निरन्तरकृताभ्यासात्षण्मासैः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ तस्य वायुप्रवेशोपि सुषुम्णायाम्भवेद्ध्रुवम् ॥ ॥ १०१ ॥ मनोजयञ्च लभते वायुविन्दुविधारणात् ॥ ऐहिकामुष्मिकीसिद्धिर्भवेन्नैवात्र संशयः ॥ १०२ ॥

टीका-जो आलस्यको त्यागके शरीरस्थ परमात्माका नित्य पूजन करेगा उसको सकलसिद्धि प्राप्त होगी इसमें संशय नहीं है यदि इसका अभ्यास निरन्तर करे तो छः मासमें सिद्धि प्राप्तहोगी और उसके सुषुम्णानाडीमें निश्चय वायु प्रवेश करेगा और मनको जीतलेगा और वायु बिन्दुका धारण सिद्धहोगा और इसलोक और परलोकको सिद्धि प्राप्त होगी इसमें संशय नहीं है ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथ स्वाधिष्ठानचक्रविवरणम् ।

मूलम्-द्वितीयन्तु सरोजञ्च लिंगमूले व्यवस्थितम् ॥बादिलान्तं च षड्वर्णं परिभा-

स्वरषड्दलम् ॥ १०३ ॥ स्वाधिष्ठानाभिधं तत्तु पंकजं शोणरूपकम् ॥ बाणाख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी॥१०४॥

टीका–दूसरा पद्म जो लिंगमूलमें स्थित है वह-ब से लतक अर्थात्-ब-भ-म-य-र-ल यह छः वर्णोंकरके युक्त है और छः दलसे शोभित है. यह रक्तवर्णपद्मका नाम स्वाधिष्ठान है और इस स्थानमें बाणनामक सिद्ध और राकिणी देवी अधिष्ठात्रीहै और ब्रह्मा देवता हैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

मूलम्–यो ध्यायति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठानारविन्दकम् ॥ तस्य कामाङ्गनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः ॥ १०५ ॥

टीका–जो पुरुष यह दिव्य स्वाधिष्ठानपद्मका सर्वदा ध्यान करते हैं उनको कामरूपिणी स्त्री कामसे मोहित होके भजतीहैं अर्थात् सेवा करती हैं ॥ १०५ ॥

मूलम्–विविधञ्चाश्रुतं शास्त्रं निःशङ्को वै वदेद्ध्रुवम् ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः ॥ १०६ ॥

टीका–विविधशास्त्र जो कभी श्रवण नहीं किया हो उसकोभी इस पद्मके ध्यानके प्रभावसे निःशंक कहेगा और सर्वरोगसे मुक्तहोके आनन्दपूर्वक संसारमें विचरेगा ॥ १०६ ॥

मूलम्–मरणं खाद्यते तेन स केनापि न खाद्यते ॥ तस्य स्यात्परमा सिद्धिरणिमादिगुणप्रदा ॥ १०७ ॥ वायुः सञ्चरते देहे रसवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ आकाशपङ्कजगलत्पीयूषमपि वर्द्धते ॥ १०८ ॥

टीका–यह साधक मृत्युको नाश करदेताहै और वह किसीसे नष्ट नहीं होता और उस साधकको गुण देनेवाली अणिमादि सिद्धि प्राप्त होती हैं और उसके शरीरमें वायु संचार करताहै अर्थात् सुषुम्णामें प्रवेश करताहै और निश्चय रसकी वृद्धि होतीहै और सहस्रदलकमलसे जो अमृत स्रवताहै उसकी वृद्धि होती है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ मणिपूरचक्रविवरणम् ।

मूलम्–तृतीयं पङ्कजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकम्॥दशारंडादिफान्तार्णं शोभितं हेमवर्णकम् ॥ १०९ ॥ रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमङ्गलदायकः ॥ तत्रस्था लाकिनीनाम्नी देवी परमधार्म्मिका ॥ ११० ॥

टीका–मणिपूरनामक तीसरा पद्म जो नाभिस्थलमें है वह हेमवर्ण दशदलकरके शोभित है और ड-से फ तक अर्थात् ड-ढ-ण-त-थ-द-ध-न-प-फ यह दश

वर्णसे युक्त है और उस स्थानमें सर्वमंगलदाता रुद्रनामक सिद्ध और लाकिनी देवी अधिष्ठात्री और विष्णुदेवता हैं ॥ १०९ ॥ ११० ॥

मूलम्–तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके ॥ तस्य पातालसिद्धिः स्यान्निरन्तरसुखावहा ॥ १११ ॥ ईप्सितञ्च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम् ॥ कालस्य वञ्चनञ्चापि परदेहप्रवेशनम् ॥ ११२ ॥

टीका–जो साधक इस मणिपूरचक्रको सर्वदा ध्यान करतेहैं सो सर्वसिद्धिदात्री जो पातालसिद्धि है उसको लाभ करते हैं और उनका दुःख रोग विनाश होके सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं और कालको निरादर कर देतेहैं और परदेहमें प्रवेश करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मूलम्–जाम्बूनदादिकरणं सिद्धानां दर्शनं भवेत् ॥ ओषधीदर्शनञ्चापि निधीनां दर्शनं भवेत् ॥ ११३ ॥

टीका–यह साधकको स्वर्णआदि रचना करनेकी शक्ति होतीहै और देवताओंका दर्शन और निधि और ओषधीका दर्शन होताहै ॥ ११३ ॥

मूलम्–हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पङ्कजं भ-

वेत् ॥ ११४ ॥ कादिठान्तार्णसंस्थानं द्वादशारसमन्वितम् ॥ अतिशोणं वायुबीजं प्रसादस्थानमीरितम् ॥ ११५ ॥

टीका-हृदयस्थानमें जो अनाहतनामक चतुर्थ पद्म है वह क-से-ठ तक अर्थात् क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ-यह बारह वर्ण और बारहदलसे युक्त है और अति उज्ज्वल रक्तवर्णसे शोभायमान है और वह प्रसन्नस्थान वायुका बीज अर्थात् प्राणवायुका आधार है ॥ ११४ ॥ ॥ ११५ ॥

मूलम्-पद्मस्थं तत्परं तेजो बाणलिंगं प्रकीर्तितम् ॥ यस्य स्मरणमात्रेण दृष्टादृष्टफलं लभेत् ॥ ११६ ॥

टीका-उस हृदयकमलमें जो परमतेज है उसीको बाणलिङ्ग कहतेहैं जिसके ध्यानमात्रसे साधक इस लोक और परलोकका उत्तम फल आनंदपूर्वक लाभ करते हैं ॥ ११६ ॥

मूलम्-सिद्धः पिनाकी यत्रास्ते काकिनी यत्र देवता ॥ एतस्मिन्सततं ध्यानं हृत्पाथोजे करोति यः ॥ क्षुभ्यन्ते तस्य कान्ता वै कामार्ता दिव्ययोषितः ॥११७॥

टीका-जिस पद्ममें पिनाकी सिद्ध और काकिनी देवी अधिष्ठात्री हैं उस हृदयस्थपद्ममें जो साधक

सर्वदा ध्यान करताहै उसके समीप कामार्ता सुन्दर स्त्री अप्सरा आदि मोहित होजाती हैं ॥ ११७ ॥

मूलम्–ज्ञानञ्चाप्रतिमं तस्य त्रिकालविषयम्भवेत् ॥ दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छया खगतां व्रजेत् ॥ ११८ ॥

टीका–उस साधकको अपूर्वज्ञान उत्पन्न होताहै और त्रिकालदर्शी होताहै और दूरशब्द श्रवण करने और दूरकी सूक्ष्मवस्तु देखनेकी शक्ति उत्पन्न होतीहै और स्वेच्छासे आकाशमें गमन करताहै ॥ ११८ ॥

मूलम्–सिद्धानां दर्शनञ्चापि योगिनीदर्शनं तथा ॥ भवेत्खेचरसिद्धिश्च खेचराणां जयन्तथा॥११९॥ यो ध्यायति परं नित्यं बाणलिंगं द्वितीयकम् ॥ खेचरी भूचरी सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः ॥ १२० ॥

टीका–जो साधक यह दूसरे परमबाणलिङ्गका नित्य ध्यान करताहै उसको देवताऔर योगिनीका दर्शन होताहै और आकाशमें गमन करनेकी शक्ति होजाती हैऔर आकाशगामीसे जयप्राप्ति होतीहैं और खेचरी भूचरी सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं है॥११९॥१२०

मूलम्–एतद्ध्यानस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवा गोपायन्ति परन्त्विदम् ॥ १२१ ॥

टीका-हे देवी। इस अनाहत पद्मके ध्यानके माहात्म्यको कोई नहीं कहसकता और इस ध्यानको ब्रह्मा आदि सकल देवता गोप्य रखते हैं ॥ १२१ ॥

अथ विशुद्धचक्रविवरणम्।

मूलम्-कण्ठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नामपञ्चमम् ॥ १२२ ॥ सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वरसंयुतम् ॥ छगलाण्डोऽस्ति सिद्धोत्र शाकिनी चाधिदेवता ॥ १२३ ॥

टीका-कंठस्थानमें जो पांचवां विशुद्धनामक कमल है वह स्वर्णके समान कांतिसे शोभित है और सोलह स्वर अर्थात् अ-आ-इ ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ-ओ-औ-अं-अः से युक्त है और छगलांड सिद्ध और शाकिनीदेवी अधिष्ठात्री और जीवात्मा देवता इस स्थानमें सदा विराजमान है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

मूलम्-ध्यानं करोति यो नित्यं स योगीश्वरपण्डितः ॥ किन्त्वस्य योगिनोऽन्यत्र विशुद्धाख्ये सरोरुहे ॥ चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव ॥ १२४ ॥

टीका-जो पुरुष इस विशुद्ध पद्मका नित्य ध्यान करताहैं सो योगीश्वर पंडित हैं और इस विशुद्धपद्ममें उस पुरुषको चारोंवेद रहस्यसहित समुद्रके रत्नवत् प्रकाश होते हैं ॥ १२४ ॥

मूलम्-इह स्थाने स्थितो योगी यदा क्रोध-
वशो भवेत्॥तदा समस्तं त्रैलोक्यं कम्प-
ते नात्र संशयः ॥ १२५ ॥

टीका-यह विशुद्धपद्ममें जब योगी मन और प्रा-
णको स्थित करके यदि क्रोध करे तो अवश्य चराचर
त्रैलोक्य कम्पायमान होजाय इसमें सन्देह नहीं॥ १२५

मूलम्-इह स्थाने मनो यस्य दैवाद्याति
लयं यदा ॥ तदा बाह्यं परित्यज्य
स्वान्तरे रमते ध्रुवम् ॥ १२६ ॥

टीका-यह कमलमें साधकका मन दैवात् जब
लय होताहै तब सकल बाह्यविषयको त्यागके योगी-
का मन और प्राण शरीरके अंतरहीमें निश्चय रमण
करताहै ॥ १२६ ॥

मूलम्-तस्य न क्षतिमायाति स्वशरीरस्य
शक्तितः ॥ संवत्सरसहस्रेऽपि वज्रातिक-
ठिनस्य वै ॥ १२७ ॥ यदा त्यजति त-
त्स्थानं योगींद्रोऽवनिमण्डले ॥ तदा वर्ष-
सहस्राणि मन्यते तत्क्षणं कृती ॥ १२८ ॥

टीका-उस योगीका शरीर वज्रसेभी कठोर होजा-
ताहै और उसको स्वशरीरकी शक्तिसे किसीप्रकारकी
हानि नहीं होतीहै और सहस्रवर्ष समाधिके पीछे जब

उस ध्यानको छोडके योगीकी चित्तवृत्ति संसारमें आवेगी तब उस सहस्रवर्षके योगी एकक्षण व्यतीत भया मानेगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

अथ आज्ञाचक्रविवरणम् ।

मूलम्–आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम् ॥ शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी ॥ १२९ ॥

टीका–भ्रूके मध्यमें जो आज्ञापद्म है उसमे हं-क्षं दो बीज हैं और सुंदर श्वेतवर्ण दो पत्रहैं और उस स्थानमें महाकाल सिद्ध है और हाकिनीदेवी अधिष्ठात्री और परमात्मा देवता है ॥ १२९ ॥

मूलम्–शरच्चंद्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृंभितम् ॥ पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति ॥ १३० ॥ तत्र देवः परन्तेजः सर्वतन्त्रेषु मन्त्रिणः ॥ चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥ १३१ ॥

टीका–उस आज्ञापद्मके मध्यमें शरच्चंद्रके समान परमतेज चंद्रबीज अर्थात् ठं बीज विराजमान है इसके ज्ञान होनेसे परमहंस पुरुषको कभी कष्ट नहीं होता यह परमतेजका प्रकाश सर्वतंत्रोंकरके गो-

पित है इसके चिंतनमात्रसे अवश्य परम सिद्धि लाभ होताहै ॥ १३० ॥ १३१ ॥

मूलम्-तुरीयं त्रितयं लिंगं तदाहं मुक्तिदायकः ॥ ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मत्समो भवति ध्रुवम् ॥ १३२ ॥

टीका-हे पार्वती ! उस स्थानमें तुरीया तृतीयलिंग हमी मुक्तिके दाता हैं इसके ध्यानमात्रसे योगीन्द्र निश्चय हमारे तुल्य होजायगा ॥ १३२ ॥

मूलम्-इडा हि पिंगला ख्याता वरणासीति होच्यते ॥ वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोत्र भाषितः ॥ १३३ ॥

टीका-इस शरीरमें जो दो इडा और पिंगला नाडी हैं उनको वरणा और असी कहते हैं यह वरणा और असीके मध्यमें स्वयं विश्वनाथजी विराजमान हैं तात्पर्य यह है कि, यह इडा और पिंगलाके मध्यमें जो स्थान है उसीको शिवजीने वाराणसी कहाहै ॥ १३३॥

मूलम्-एतत्क्षेत्रस्य माहात्म्यमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ शास्त्रेषु बहुधा प्रोक्तं परं तत्त्वं सुभाषितम् ॥ १३४ ॥

टीका-यह वाराणसी क्षेत्रके माहात्म्यको तत्त्वदर्शी ऋषिलोगोंने अनेक शास्त्रोंमें बहुत प्रकारसे परम तत्त्व कहाहै ॥ १३४ ॥

मूलम्–सुषुम्णा मेरुणा याता ब्रह्मरन्ध्रं यतोऽस्ति वै ॥ ततश्चैषा परावृत्य तदाज्ञापद्मदक्षिणे ॥ १३५ ॥ वामनासापुटं याति गंगेति परिगीयते ॥ १३६ ॥

टीका–सुषुम्णानाडी मेरुदंडद्वारा जहां ब्रह्मरन्ध्र है उस स्थानमें गई है और इडानाडी मेरुतक जायके लौटीहै और आज्ञाचक्रके दक्षिणभाग होके वामनासापुटको गई है इसको गङ्गा कहतेहैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

मूलम्–ब्रह्मरन्ध्रे हि यत्पद्मं सहस्रारं व्यवस्थितम्॥तत्र कन्देहि या योनिस्तस्यां चन्द्रो व्यवस्थितः ॥१३७॥ त्रिकोणाकारतस्तस्याः सुधा क्षरति सन्ततम्॥इडायाममृतं तत्र समं स्रवति चन्द्रमाः ॥१३८॥ अमृतं वहति द्वारा धारारूपं निरन्तरम् ॥ वामनासापुटं याति गंगेत्युक्ता हि योगिभिः ॥ १३९ ॥

टीका–ब्रह्मरन्ध्रमें जो सहस्रदल-पद्म है उस पद्मके कन्दमें योनि है उस योनिमें चन्द्रमा विराजमान है और वही त्रिकोणाकार योनिसे चन्द्रविगलित अमृत सर्वदा स्रवता है सो अमृत चंद्रमासे इडानाडीद्वारा समभावसे निरन्तर धारारूप गमन करता है और

उस इडानाडीकी गति वामनासापुटमें है उस हेतुसे योगीलोग इस नाडीको गंगाकहतेहैं॥ १३७।१३८।१३९॥

मूलम्–आज्ञापङ्कजदक्षांसाद्वामनासापुटंगता ॥ उदग्वहेति तत्रेडा गंगेति समुदाहृता ॥ १४० ॥

टीका–वह इडानाडी आज्ञापद्मके दक्षिणभागसे वामनासापुटको गमन करती है इसीको उदग्वाहिनी गंगा कहते हैं ॥ १४० ॥

मूलम्–ततो द्वयोर्हि मध्ये तु वाराणसीति चिन्तयेत् ॥ तदाकारा पिंगलापि तदाज्ञाकमलोत्तरे ॥ दक्षनासापुटे याति प्रोक्तास्माभिरसीति वै ॥ १४१ ॥

टीका–यह इडा और पिङ्गलाके मध्यस्थानको वाराणसी चिन्तनाकरे और इडानाकीके समान पिङ्गला भी उस आज्ञाकमलके वामभागसे दक्ष नासापुटको गई है उस हेतुसे हेदेवी ! इस पिङ्गलाको हमने असी कहाहै ॥ १४१ ॥

मूलम्–मूलाधारे हि यत्पद्मं चतुष्पत्रं व्यवस्थितम् ॥ तत्र कन्देस्ति या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः ॥ १४२ ॥

टीका–जो मूलाधारपद्म चारदलसे युक्तहै उस कमलके कन्दमें जो योनिहै इस योनिमें सूर्य स्थितहै॥ १४२॥

मूलम्-तत्सूर्यमण्डलद्वाराद्विषं क्षरति सन्ततम् ॥ १४३ ॥ पिंगलायां विषं तत्र समर्पयति तापनः ॥ विषं तत्र वहन्ती या धारारूपं निरन्तरम् ॥ दक्षनासापुटे याति कल्पितेयन्तु पूर्ववत् ॥ १४४ ॥

टीका-वही सूर्यमण्डलसे निरन्तर विष स्रवता है और पिङ्गलाद्वारा गमन करताहै और वह विष सर्वदा धारारूप पिङ्गलानाडीसे प्रवाहित रहताहै और यह पिङ्गलानाडी दक्षिणनासापुटमें गई है॥१४३॥१४४॥

मूलम्-आज्ञापङ्कजवामास्याद्दक्षनासापुटं गता ॥ उदग्वहा पिंगलापि पुरासीति प्रकीर्तिता ॥ १४५ ॥

टीका-यह नाडी आज्ञाकमलके वामभागसे दक्षिण नासिकापुटको गई है इस हेतुसे यह पिङ्गलानाडीको असी कहते हैं ॥ १४५ ॥

मूलम्-आज्ञापद्ममिदं प्रोक्तं यत्र देवो महेश्वरः ॥ १४६ ॥ पीठत्रयं ततश्चोर्ध्वं निरुक्तं योगचिन्तकैः ॥ तद्बिन्दुनादशक्त्याख्यं भालपद्मे व्यवस्थितम् ॥ १४७ ॥

टीका-इस स्थानमें महेश्वर देवताहै इसको आज्ञापद्म कहते हैं और योगचिन्तक लोग कहते

हैं कि, इस पद्मके ऊपर पीठत्रयकी स्थिति है अर्थात् नाद, बिंदु, शक्ति यह तीनों इस भालपद्ममें विराजमान हैं ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

मूलम्-यः करोति सदाध्यानमाज्ञापद्मस्य गोपितम् ॥ पूर्वजन्मकृतं कर्म विनश्येदविरोधतः ॥ १४८ ॥

टीका-जो पुरुष सर्वदा गोपित करके इस आज्ञाकमलका ध्यान करते हैं उनका पूर्वजन्मकृत कर्मफल सकल निर्विघ्न नाश होजाताहै ॥ १४८ ॥

मूलम्-इह स्थितः सदा योगी ध्यानं कुर्यान्निरन्तरम् ॥ तदा करोति प्रतिमां प्रतिजापमनर्थवत् ॥ १४९ ॥

टीका-जब योगी यह ध्यान सर्वदा निरन्तर करे तो उसका प्रतिमापूजन करना वा जप करना सर्वथा अनर्थवत् है ॥ १४९ ॥

मूलम्-यक्षराक्षसगन्धर्वा अप्सरोगणकिन्नराः ॥ सेवन्ते चरणौ तस्य सर्वे तस्य वशानुगाः ॥ १५० ॥

टीका-यक्ष और राक्षस और गन्धर्व और अप्सरा और किन्नर आदि सब इस ध्यानयुक्त योगीके वशमें होजाते हैं और उसके चरणकी सेवा करते हैं॥ १५० ॥

मूलम्-करोति रसनां योगी प्रविष्टां विपरीतगाम् ॥लम्बिकोर्ध्वेषु गर्तेषु धृत्वा ध्यानं भयापहम् ॥ १५१ ॥ अस्मिन् स्थाने मनो यस्य क्षणार्धं वर्ततेऽचलम् ॥ तस्य सर्वाणि पापानि संशयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ १५२ ॥

टीका-जो योगी विपरीतगामी जिह्वाको ऊपर तालुमूलमें प्रवेश करके यह भयनाशक आज्ञाकमलका ध्यान अर्धक्षणभी मन अचल स्थिरतापूर्वक करते हैं उनका सकल पातक उसीक्षण नाश होजाताहै ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

मूलम्-यानि यानि हि प्रोक्तानि पंचपद्मे फलानि वै ॥ तानि सर्वाणि सुतरामेतज्ज्ञानाद्भवन्ति हि ॥ १५३ ॥

टीका-पंच पद्मका जो जो फल पहिले कहाहै सो सबका समस्त फल आपही इस आज्ञाकमलके ध्यानसेही प्राप्त होजायगा ॥ १५३ ॥

मूलम्-यः करोति सदाभ्यासमाज्ञा पद्मे विचक्षणः ॥ वासनाया महाबन्धं तिरस्कृत्य प्रमोदते ॥ १५४ ॥

टीका-जो बुद्धिमान् सर्वदा मन स्थिर करके यह आज्ञापद्मका अभ्यास करते हैं वह वासनारूपी महाबन्धको निरादर करके आनन्द लाभ करतेहैं॥ १५४॥

मूलम्-प्राणप्रयाणसमये यत्पद्मं यः स्मरन्सुधीः॥ त्यजेत्प्राणं स धर्मात्मा परमात्मनि लीयते ॥ १५५ ॥

टीका-जो बुद्धिमान् मृत्युके समय उस आज्ञापद्मका ध्यान करेगा सो धर्मात्मा प्राणको त्यागके परत्मामें लय होजायगा ॥ १५५ ॥

मूलम्-तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् जाग्रत् योध्यानं कुरुते नरः ॥ पापकर्म विकुर्वाणो नहि मज्जति किल्विषे ॥ १५६ ॥

टीका-जो मनुष्य बैठे चलते जाग्रतमें स्वप्नमें सर्वदा इस कमलका ध्यान करते हैं सो यदि पापकर्म रतभी हों तोभी मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ १५६ ॥

मूलम्-राजयोगाधिकारी स्यादेतच्चिन्तनतो ध्रुवम्॥ योगी बन्धाद्विनिर्मुक्तःस्वीयया प्रभया स्वयम् ॥ १५७ ॥ द्विदलध्यानमाहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते॥ब्रह्मादिदेवताश्चैव किञ्चिन्मत्तो विदन्ति ते॥१५८॥

टीका–जो इस कमलका ध्यान करता है वह निश्चय राजयोगका अधिकारी है योगी स्वयं अपने प्रभासे सकलबन्धसे मुक्त होजाता है हेदेवि! इस द्विदलपद्मके माहात्म्यको कोई कहनेमें समर्थ नहीं है ब्रह्मा आदि देवता इस पद्मके माहात्म्यको किञ्चित् हमारे द्वारा जानते हैं ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

मूलम्–अत ऊर्ध्वं तालुमूले सहस्रारंसरोरुहम् ॥ अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम् ॥ १५९ ॥

टीका–इस आज्ञापद्मके ऊपर तालुमूलमें सहस्रदल कमल शोभायमान है उसी स्थानमें ब्रह्मरन्ध्रके विवरमूलमें सुषुम्णा स्थित है ॥ १५९ ॥

मूलम्–तालुमूले सुषुम्णास्य अधोवक्त्राप्रवर्तते ॥ मूलाधारेणयोन्यस्ताः सर्वनाड्यः समाश्रिताः॥ताबीजभूतास्तत्त्वस्य ब्रह्ममार्गप्रदायिकाः ॥ १६० ॥

टीका–वह सुषुम्णाका मुख तालुमूल अर्थात् ब्रह्मरंध्रमें नीचेको वर्तमान है और मूलाधारसे योनि पर्यंत जो सकल नाडी हैं वह इस तत्त्वज्ञानबीजस्वरूप ब्रह्ममार्गकी दाता सुषुम्णाके अधोवदनके अवलम्बसे स्थित हैं ॥ १६० ॥

मूलम्–तालुस्थाने च यत्पद्मं सहस्रारं पुरोदितम्॥तत्कन्दे योनिरेकास्ति पश्चिमाभिमुखी मता ॥ १६१ ॥ तस्य मध्ये सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्॥ब्रह्मरन्ध्रं तदेवोक्तमामूलाधारपङ्कजम् ॥ १६२ ॥

टीका–तालुस्थानमें जो सहस्रदल कमल कहा गया है उसके कन्दमें एक योनि पश्चिमाभिमुखीहैअर्थात् पीछेको मुख है उस योनिके मध्यमें जो मूलविवरहैउसमें सुषुम्णा ज्ञाननाडी स्थित है हेदेवी!इसको ब्रह्मरन्ध्रऔर इसीको मूलाधारपद्मभी कहते हैं ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

मूलम्–तत्रांतरन्ध्रे चिच्छक्तिः सुषुम्णा कुण्डली सदा ॥ १६३ ॥ सुषुम्णायां स्थिता नाडी चित्रा स्यान्मम वल्लभे ॥ तस्यां मम मते कार्या ब्रह्मरन्ध्रादिकल्पना॥१६४॥

टीका–यह सुषुम्णानाडीके रन्ध्रमें कुण्डलिनी शक्ति सर्वदा विराजमान है वह सुषुम्णा अन्तर्गता शक्तिको चित्रानाडी कहते हैं हे प्रिये पार्वति !हमारे मतमें इसी चित्रासे ब्रह्मरन्ध्र आदि कल्पना भई है॥१६३॥१६४

मूलम्–यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्मज्ञत्वं प्रजायते ॥ पापक्षयश्च भवति न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ १६५ ॥

टीका-यह चित्रानाडीके ध्यानमात्रसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है और पाप क्षय होजाता है और फिर संसाररूपी वन्धमें योगी नहीं पडता अर्थात् मोक्ष होजाता है ॥ १६५ ॥

मूलम्-प्रवेशितं चलाङ्गुष्ठं मुखे स्वस्य निवेशयेत् ॥ तेनात्र न वहत्येव देहचारी समीरणः ॥ १६६ ॥

टीका-दक्षिणहाथके अङ्गुष्ठको मुखमें प्रवेश करके मुखको बन्द करलेनेसे देहचारी जो प्राणवायु है वह निश्चय स्थिर होजाता है ॥ १६६ ॥

मूलम्-तेन संसारचक्रेऽस्मिन्न भ्रमन्ते च सर्वदा॥तदर्थं ये प्रवर्तन्ते योगिनः प्राणधारणे ॥१६७॥तत एवाखिला नाडी निरुद्धा चाष्टवेष्टनम्॥ इयं कुण्डलिनी शक्ती रन्ध्रं त्यजति नान्यथा ॥ १६८ ॥

टीका-यह प्राणवायुके स्थिर होजानेसे इस संसार चक्रमें सर्वदा भ्रमण करना छूटजाता है अर्थात् मोक्ष होजाता है इसहेतुसे योगी प्राणवायुके धारण करनेमें प्रवृत्त होते हैं और इसधारणसे सकलनाडी जो मल और काम क्रोधादि आठप्रकारसे बन्धनमें हैं वह खुल जाती हैं तब यह कुंडलिनीशक्ति ब्रह्मरन्ध्रको निश्चय

त्याग देती है इसके त्यागदेनेसे जीव ब्रह्मका सम्बन्ध होजाता है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

मूलम्-यदा पूर्णासु नाडीषु सन्निरुद्धानिला-स्तदा बन्धत्यागेन कुण्डल्या मुखं र-न्ध्राद्बहिर्भवेत् ॥ सुषुम्णायां सदैवायं व-हेत्प्राणसमीरणः ॥ १६९ ॥

टीका-जब वायु निरोध होके सकलनाडीमें पूर्ण होजायगा तब कुण्डलिनी अपने बन्धको त्याग-के ब्रह्मरन्ध्रके मुखको त्यागदेगी तव प्राणवायुका प्रवाह सदैव सुषुम्णामें होजायगा ॥ १६९ ॥

मूलम्-मूलपद्मास्थिता योनिर्वामदक्षिण-कोणतः॥इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा यो-निमध्यगा ॥ १७० ॥ ब्रह्मरध्रंतु तत्रैव सुषुम्णाधारमण्डले ॥ यो जानाति स मुक्तः स्यात्कर्मबन्धाद्विचक्षणः ॥ १७१ ॥

टीका-मूलाधारपद्मस्थित जो योनि है उस योनिके बाम दक्षिण भागमें इडा और पिंगला नाडी स्थितहैं और दोनों नाडीके बीचमें अर्थात् योनिके मध्यमें सुषुम्णाकी स्थिति है उसी सुषुम्णाके आधारमंडलमें अर्थात् उसके मध्यमें ब्रह्मरन्ध्र है जो इसको जानता है सो बुद्धिमान् कर्मबन्धसे मुक्त है ॥ १७० ॥ १७१ ॥

मूलम्-ब्रह्मरन्ध्रमुखे तासां संगमः स्याद-
संशयः ॥तस्मिन्स्नाने स्नातकानां मुक्तिः
स्यादविरोधतः ॥ १७२ ॥

टीका-ब्रह्मरन्ध्रके मुखमें इन तीनों नाडीका निश्चय सम्बन्ध है इसमें स्नान करनेसे ज्ञानीलोगोंको मुक्तिलाभ होगा ॥ १७२ ॥

मूलम्-गंगायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्व-
ती ॥ तासां तु संगमे स्नात्वा धन्यो याति
परां गतिम् ॥ १७३ ॥

टीका-गंगा यमुनाके मध्यमें सरस्वतीका प्रवाह है यह त्रिवेणीसंगममें स्नान करनेसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १७३ ॥

मूलम्-इडा गंगा पुरा प्रोक्ता पिंगला चार्कपु-
त्रिका ॥ मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां
संगोऽतिदुर्लभः ॥ १७४ ॥

टीका-इडा गंगा है और पिंगला यमुना है और मध्यमें सुषुम्णा सरस्वती है यह त्रिवेणी संगम कहा गया है इसका स्नान अतिदुर्लभ है ॥ १७४ ॥

मूलम्-सितासिते संगमे यो मनसा स्ना-
नमाचरेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति
ब्रह्म सनातनम् ॥ १७५ ॥

टीका–जो इडा और पिंगलाके संगममें मानसिक स्नान करताहै वह साधक सर्व पापसे मुक्त होके सनातन ब्रह्ममें लय होजाताहै ॥ १७५ ॥

मूलम्–त्रिवेण्यां संगमे यो वै पितृकर्म समाचरेत् ॥ तारयित्वा पितॄन्सर्वान्स याति परमां गतिम् ॥ १७६ ॥

टीका–जो पुरुष इस त्रिवेणीसंगममें पितृकर्मका अनुष्ठान करते हैं वह सर्व पितृकुलको तारके परम गतिको लाभ करते हैं ॥ १७६ ॥

मूलम्–नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रत्यहं यः समाचरेत्॥मनसा चिन्तयित्वा तु सोऽक्षयं फलमाप्नुयात् ॥ १७७ ॥

टीका–उसी संगमस्थानमें जो साधक नित्यऔर नैमित्तिक और काम्यकर्मकाअनुष्ठान सर्वदा मनसेचिन्तनपूर्वक करते हैं सो अक्षय फललाभ करते हैं॥१७७॥

मूलम्–सकृद्यः कुरुते स्नानं स्वर्गे सौख्यं भुनक्ति सः ॥ दग्ध्वा पापानशेषान्वै योगी शुद्धमतिःस्वयम् ॥ १७८॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा ॥ स्नानाचरणमात्रेण पूतो भवति नान्यथा ॥ १७९ ॥

टीका—जो पवित्रमति योगी एकवार इस संगममें स्नान करते हैं वह सर्व पापको दग्धकरके स्वर्गकादिव्य भोग भोगते हैं और यह साधक पवित्र हो वा अपवित्र हो वा किसी अवस्थामें हो यह संगमके ध्यानरूपी स्नानमात्रसे निश्चय पवित्र होजायगा ॥१७८॥१७९॥

मूलम्—मृत्युकाले प्लुतं देहं त्रिवेण्याः सलिले यदा ॥ विचिन्त्य यस्त्यजेत्प्राणान्स तदा मोक्षमाप्नुयात् ॥ १८० ॥

टीका—मृत्युके समयमें साधक जो यह चिंतन करे कि हमारा शरीर त्रिवेणीके सलिलमें मग्न है तो उसी क्षण प्राणको त्यागके मोक्षगतिको प्राप्त होगा॥१८०॥

मूलम्—नातःपरतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ गोप्तव्यं तत्प्रयत्नेन न व्याख्येयं कदाचन ॥ १८१ ॥

टीका—इस तीर्थसे परे त्रिभुवनमें दूसरा गुप्त तीर्थ नहीं है इसको यत्नसे गोपित रखना उचित है यह कदापि प्रकाश करनेके योग्य नहीं है ॥ १८१ ॥

मूलम्—ब्रह्मरन्ध्रे मनो दत्त्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ १८२ ॥

टीका—ब्रह्मरन्ध्रमें मन देकरके यदि क्षणार्धभी स्थिर

रक्खे तो सर्वपापसे मुक्त होके साधक परमगतिको अर्थात् मोक्षको प्राप्त होजाताहै ॥ १८२ ॥

मूलम्-अस्मिँल्लीनं मनो यस्य स योगी मयि लीयते ॥ अणिमादिगुणान्भुक्त्वा स्वेच्छया पुरुषोत्तमः ॥ १८३ ॥

टीका-हे पार्वती ! इस ब्रह्मरन्ध्रमें जिसका मन लीन होय सो पुरुषोत्तम योगी अणिमादिगुणोंको भोगके इच्छापूर्वक हमारेमें लय होजायगा ॥ १८३ ॥

मूलम्-एतद्रन्ध्रध्यानमात्रेण मर्त्यः संसारेऽस्मिन्वल्लभो मे भवेत्सः ॥ पापाञ्जित्वा मुक्तिमार्गाधिकारी ज्ञानं दत्त्वा तारयत्यद्भुतं वै ॥ १८४ ॥

टीका-हे देवी ! इस ब्रह्मरन्ध्रके ध्यानमात्रसे इस संसारमें प्राणी हमको प्रिय होजाता है और पापराशिको जीतके यह साधक मुक्तिमार्गका अधिकारी होजाता है और अनेक मनुष्योंको ज्ञान उपदेश करके संसारसे परित्राण करदेता है ॥ १८४ ॥

मूलम्-चतुर्मुखादित्रिदशैरगम्यं योगिवल्लभम् ॥ प्रयत्नेन सुगोप्यं तद्ब्रह्मरन्ध्रं मयोदितम् ॥ १८५ ॥

टीका-हे देवी ! यह ब्रह्मरन्ध्रका ध्यान जो हमने

कहा है इसको यत्न करके गोपित रखना उचित है यह ज्ञान योगीलोगोंको अतिप्रिय है इसका मार्ग ब्रह्मा आदि देवताओंकोभी अगम्य है ॥ १८५ ॥

मूलम्-पुरा मयोक्ता या योनिः सहस्रारे सरोरुहे ॥ तस्याऽधो वर्तते चन्द्रस्तद्ध्यानं क्रियते बुधैः ॥ १८६ ॥

टीका-हे देवि! पहिले जो सहस्रदलकमलके मध्यमें योनिमण्डल हमने कहा है उस योनिके अधोभागमें चन्द्रमा स्थित हैयह चन्द्रमण्डलका बुद्धिमान् लोग सर्वदा ध्यान करते हैं ॥ १८६ ॥

मूलम्-यस्य स्मरणमात्रेण योगीन्द्रोऽवनिमण्डले ॥ पूज्यो भवति देवानां सिद्धानां सम्मतो भवेत् ॥ १८७ ॥

टीका-इस चन्द्रमंडलके ध्यानमात्रसे योगीन्द्र संसारमें पूजनीय होजाता है और देवता और सिद्धलोगोंके तुल्य होजाता है ॥ १८७ ॥

मूलम्-शिरःकपालविवरे ध्यायेद्दुग्धमहोदधिम् ॥ तत्र स्थित्वा सहस्रारे पद्मे चन्द्रं विचिन्तयेत् ॥ १८८ ॥

टीका-शिरस्थित जो कपालविवर है उसमें क्षीर-

समुद्रका ध्यान करे उसी स्थानमें स्थितिपूर्वक सहस्र-दलकमलमें चन्द्रमाका चिन्तन करे ॥ १८८ ॥

मूलम्-शिरःकपालविवरे द्विरष्टकलया युतः ॥ पीयूषभानुहंसाख्यं भावयेत्तं निरंजनम् ॥ १८९ ॥ निरन्तरकृताभ्यासात्रिदिने पश्यति ध्रुवम् ॥ दृष्टिमात्रेण पापौघं दहत्येव स साधकः ॥ १९० ॥

टीका-अह शिरःस्थित कपालविवरमें सोलह कला संयुक्त अमृतकिरणसे युक्त हंससंज्ञक निरंजनका चिन्तन करे निरन्तर तीन दिन यह अभ्यास करनेसे निरञ्जनका साक्षात् साधकको अवश्य प्रकाश होगा सो साधक दृष्टिमात्रसे सर्व पातकोंको दहन करडालेगा ॥ १८९ ॥ १९० ॥

मूलम्-अनागतञ्च स्फुरति चित्तशुद्धिर्भवेत्खलु ॥ सद्यः कृत्वापि दहति महापातकपञ्चकम् ॥ १९१ ॥

टीका-यह ध्यान करनेसे अनागतविषयकी स्फूर्ति होगी अर्थात् जो विषय कभी उत्पन्न नहीं भया है उसकी स्फूर्ति होगी और चित्तकी शुद्धि होगी और साधक ध्यानमात्रसे उसी क्षण पञ्चमहापातक दहन करडालेगा ॥ १९१ ॥

मूलम्-आनुकूल्यं ग्रहा यान्ति सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ॥ उपसर्गाः शमं यान्ति युद्धे जयमवाप्नुयात् ॥ १९२ ॥ खेचरीभूचरीसिद्धिर्भवेत्क्षीरेन्दुदर्शनात् ॥ ध्यानादेव भवेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ १९३ ॥ सन्तताभ्यासयोगेन सिद्धो भवति मानवः ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ योगशास्त्रं च परमं योगिनां सिद्धिदायकम् ॥ १९४ ॥

टीका–शिरःस्थचन्द्रमाका ध्यान करनेसे सर्व ग्रह अनुकूल होजातेहैं और समस्त उपद्रवका नाश होजाताहै और उपसर्ग प्रशमित होते हैं और युद्धमें जय लाभ होता है और खेचरी भूचरीकी सिद्धि प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं है और निरन्तर यह योगाभ्यास करनेसे अवश्य साधक सिद्ध होजाता है। हे पार्वती! हम सत्य सत्य वारंवार कहते हैं कि हमारे तुल्य होजायगा इसमें सन्देह नहीं है यह परमयोग योगीलोगोंको सिद्धिका दाता है ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

अथ राजयोगकथनम् ।

मूलम्-अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम् ॥ ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये

तिष्ठति मुक्तिदम् ॥ १९५ ॥ कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति ॥ अकुलाख्योऽविनाशी च क्षयवृद्धिविवर्जितः ॥ १९६ ॥

टीका-तालुके ऊपरभागमें दिव्य सहस्रदल कमल है यह कमल मुक्तिदाता ब्रह्मांडरूपी शरीरके बाहर स्थित है अर्थात् शरीरके ऊपर अंतमें है इसी कमलको कैलास कहते हैं इसी स्थानमें महेश्वरकी स्थिति है यह ईश्वर निराकुल अविनाशी और क्षयवृद्धिरहित है ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

मूलम्-स्थानस्यास्य ज्ञानमात्रेण नृणां संसारेऽस्मिन्सम्भवो नैव भूयः ॥ भूतग्रामं सन्तताभ्यासयोगात्कर्तुं हर्तुं स्याच्च शक्तिः समग्रा ॥ १९७ ॥

टीका-इस स्थानके ज्ञानमात्रसे जीवका यह संसारमें फिर जन्म नहीं होता और सर्वदा यह ज्ञानयोग अभ्यास करनेसे जीवमात्रकी स्थिति संहार करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १९७ ॥

मूलम्-स्थाने परे हंसनिवासभूते कैलासनाम्नीह निविष्टचेताः ॥ योगी हृतव्याधिरधःकृताधिर्वायुश्चिरं जीवति मृत्युमुक्तः १९८ ॥

टीका-यह कैलासनामक स्थानमें परमहंसका निवास है सो सहस्रदलकमलमें जो साधक मनको

स्थिर करता है उसकी सकल व्याधि नाश होजाती है और मृत्युसे छूटके अमर होजाता है ॥ १९८ ॥

मूलम्-चित्तवृत्तिर्यदा लीना कुलाख्ये परमेश्वरे ॥ तदा समाधिसाम्येन योगी निश्चलतां व्रजेत् ॥ १९९ ॥

टीका-जब साधक यह कुलनामक ईश्वरमें चित्तको लीन करदेगा तब योगीकी समाधि निश्चल सम होजायगी ॥ १९९ ॥

मूलम्-निरन्तरकृते ध्याने जगद्विस्मरणं भवेत् ॥ तदा विचित्रसामर्थ्यं योगिनो भवति ध्रुवम् ॥ २०० ॥

टीका-यह निरन्तर ध्यान करनेसे जगत् विस्मरण होजायगा तब योगीको अवश्य विचित्र सामर्थ्य होजायगी ॥ २०० ॥

मूलम्-तस्माद्गलितपीयूषं पिबेद्योगी निरन्तरम् ॥ मृत्योर्मृत्युं विधायाशु कुलं जित्वा सरोरुहे ॥ २०१ ॥ अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लयं याति कुलाभिधा ॥ तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लीयते परमात्मनि ॥ २०२ ॥

टीका-सहस्रदलकमलसे जो अमृत स्रवता है उ-

सको योगी निरन्तर पान करता है सो योगी अपने मृत्युके मृत्युविधानपूर्वक कुलसहित जय करके चिरंजीवी होजाता है और यही सहस्रदलकमलमें कुलरूपा कुण्डलिनी शक्तिका लय होजाता है तब यह चतुर्विध सृष्टिभी परमात्मामें लय होजाती है ॥२०१॥२०२॥

मूलम्-यज्ज्ञात्वा प्राप्य विषयं चित्तवृत्ति-
र्विलीयते ॥ तस्मिन्परिश्रमं योगी करो-
ति निरपेक्षकः ॥ २०३ ॥

टीका-यह सहस्रदलकमलके ज्ञान होनेसे अर्थात् इस विषयको प्राप्त करनेसे चित्तवृत्तिका लय होजाताहै इस हेतुसे इसके ज्ञानार्थ निरपेक्षरूपसे योगी परिश्रम करे ॥ २०३ ॥

मूलम्-चित्तवृत्तिर्यदा लीना तस्मिन्योगी
भवेद्ध्रुवम् ॥ तदा विज्ञायतेऽखण्डज्ञानरूपो
निरञ्जनः ॥ २०४ ॥

टीका-जब योगीकी चित्तवृत्ति इसमें निश्चय लय होजायगी तब अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जनका प्रकाश होगा अर्थात् ज्ञान होगा ॥ २०४ ॥

मूलम्-ब्रह्मांडबाह्ये संचिंत्य स्वप्रतीकं य-
थोदितम् ॥ तमावेश्य महच्छून्यं चिन्त-
येदविरोधतः ॥ २०५ ॥

टीका—ब्रह्माण्डके बाहर अर्थात् ब्रह्मांडरूप शरीरके बाहर पूर्वोक्त स्वप्रतीकका चिन्तन करे उससे चित्तको स्थिरकरके महत् शून्यका शुद्धवृत्तिसे चिन्तनकरे२०५

मूलम्—आद्यन्तमध्यशून्यं तत्कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ चन्द्रकोटिप्रतीकाशमभ्यस्य सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २०६ ॥

टीका—आदि अंत मध्य शून्य यह सर्वत्र शून्यमें कोटि सूर्यके समान प्रभा और कोटिचन्द्रके समान शीतलप्रकाशके देखनेका अभ्यास करनेसे साधकको परमसिद्धि लाभ होगी ॥ २०६ ॥

मूलम्—एतद्ध्यानं सदा कुर्यादनालस्यं दिने दिने ॥ तस्य स्यात्सकला सिद्धिर्वत्सरान्नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

टीका—जो पुरुष आलस्यको त्यागके सर्वदा प्रतिदिन इस शून्यका ध्यान करेगा उसको निश्चय एकवर्षमें सकल सिद्धि लाभ होगी ॥ २०७ ॥

क्षणार्धं निश्चलं तत्र मनो यस्य भवेद्ध्रुवम् ॥ स एव योगी सद्भक्तः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ तस्य कल्मषसंघातस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २०८ ॥

टीका—जो साधक इस शून्यमें अर्धक्षणभी मनको

निश्चल स्थिर रक्खेगा वही निश्चय यथार्थ भक्त योगी है और वह सर्व लोकमें पूजित होता है और उसके पापका समूह उसी क्षण नष्ट होजाता है ॥ २०८ ॥

मूलम्-यं दृष्ट्वा न प्रवर्तंते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ अभ्यसेत्तं प्रयत्नेन स्वाधिष्ठानेन वर्त्मना ॥ २०९ ॥

टीका-इसके अवलोकन करनेसे मृत्युरूप जो संसारपथ है इसमें भ्रमण करना छूट जायगा अर्थात जन्ममरणसे रहित होजायगा इसका अभ्यास स्वाधिष्ठानमार्गसे यत्न करके करना उचित है ॥२०९॥

मूलम्-एतद्ध्यानस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ यः साधयति जानाति सोस्माकमपि सम्मतः ॥ २१० ॥

टीका-हे देवी ! इस शून्यके ध्यानके माहात्म्यको हम नहीं कहसकते अर्थात् बहुत विशेष है जो योगी इसका अभ्यास करते हैं सो जानते हैं और वह हमारे बराबरहैं ॥ २१० ॥

मूलम्-ध्यानादेव विजानाति विचित्रफलसम्भवम् ॥ अणिमादिगुणोपेतो भवत्येव न संशयः ॥ २११ ॥

टीका-यह शून्यके ध्यानका विचित्र फल ध्यानसे ही जाना जाता है इसके प्रभावसे साधकको अणिमादि अष्टसिद्धिं अवश्य प्राप्त होती है ॥ २११ ॥

मूलम्-राजयोगो मयाख्यातः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ॥ राजाधिराजयोगोऽयं कथयामि समासतः ॥ २१२ ॥

टीका-हे पार्वती ! यह राजयोग सर्वतन्त्रोंकरके गोपित है सो तुमसे हमने कहा है अब राजाधिराज योग विस्तारसहित कहते हैं श्रवण करो ॥ २१२ ॥

मूलम्-स्वस्तिकञ्चासनं कृत्वा सुमठे जन्तुवर्जिते ॥ गुरुं संपूज्य यत्नेन ध्यानमेतत्समाचरेत् ॥ २१३ ॥

टीका-साधक एकांतस्थान जनरहित सुन्दर मठमें यत्नपूर्वक गुरुकी पूजा करके स्वस्तिकासनसे स्थित होके यह ध्यान करे ॥ २१३ ॥

मूलम्-निरालम्बं भवेज्जीवं ज्ञात्वा वेदान्तयुक्तितः॥निरालम्बं मनः कृत्वा न किञ्चिच्चिन्तयेत्सुधीः ॥ २१४ ॥

टीका-बुद्धिमान् योगी वेदांतयुक्ति अनुसार जीवको और मनको निरालम्ब करके चिन्तन करे इसके सिवाय और कुछ चिन्तना न करे ॥ २१४ ॥

मूलम्-एतद्ध्यानान्महासिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥ वृत्तिहीनं मनः कृत्वा पूर्वरूपं स्वयं भवेत् ॥ २१५ ॥

टीका-इसप्रकार ध्यान करनेसे महासिद्धि उत्पन्न होगी इसमें संशय नहीं है ऐसेही मनको वृत्तिहीन करके साधक आपही पूर्ण आत्मस्वरूप होजायगा ॥ २१५ ॥

मूलम्-साधयेत्सततं यो वै स योगी विगत-स्पृहः ॥ अहंनाम न कोप्यस्ति सर्वदा-त्मैव विद्यते ॥ २१६ ॥

टीका-जो योगी निरन्तर इसप्रकार साधन करे सो इच्छारहित है अर्थात् उसको किसी वस्तुकी इच्छा न होगी और उसके वदनसे अहंशब्द कभी उच्चारण न होगी वह सर्वदा सर्ववस्तुको आत्मस्वरूपही देखेगा ॥ २१६ ॥

मूलम्-को बन्धः कस्य वा मोक्ष एकं पश्ये-त्सदा हि सः ॥ २१७ ॥ एतत्करोति यो नित्यं स मुक्तो नात्र संशयः॥स एव योगी सद्भक्तः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ २१८ ॥

टीका-कौन बन्ध है और क्या मोक्ष है सर्वदा एक परिपूर्ण आत्माको देखे जो योगी यह नित्य चिन्तनक-

रता है सो मुक्त है इसमें संशय नहीं है और निश्चय वही योगी सद्भक्त है और सर्वलोकमें पूजनीय है२१७॥२१८

मूलम्–अहमस्मीति यन्मत्वा जीवात्मपरमात्मनोः ॥ अहं त्वमेतदुभयं त्यक्त्वाखण्डं विचिन्तयेत् ॥ २१९ ॥अध्यारोपापवादाभ्यां यत्र सर्वं विलीयते ॥ तद्बीजमाश्रये- द्योगी सर्वसंगविवर्जितः ॥ २२० ॥

टीका–योगी अपनेको और जीवात्मा और परमात्माको तुल्य माने अर्थात् भेदरहित होजाय और हम और तुम यह दोनों भावको त्यागके एक अखण्ड ब्रह्मका चिन्तन करे अध्यारोपअपवादद्वारा जिसमें सर्व वस्तुका लय होजाता है योगी सर्वसङ्गसे रहित होके उसी बीजके आश्रय होजाय अर्थात् चित्तवृत्तिको आत्मामें लय करदे ॥ २१९ ॥ २२० ॥

मूलम्–अपरोक्षं चिदानन्दं पूर्णं त्यक्त्वा भ्रमाकुलाः॥ परोक्षं चापरोक्षं च कृत्वा मूढा भ्रमन्ति वै ॥ २२१ ॥

टीका-मूढबुद्धिके मनुष्य अपरोक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष परिपूर्णब्रह्मको छोड करके भ्रममें पडके परोक्ष और अपरोक्षका रात्रि दिवस निर्णय करते फिरते हैं ॥२२१॥

मूलम्–चराचरमिदं विश्वं परोक्षं यः करोति च ॥ अपरोक्षं परं ब्रह्म त्यक्तं तस्मिन् प्रलीयते ॥ २२२ ॥

टीका–जो मनुष्य यह चराचरसंसारको शास्त्रसे विवाद करके परोक्ष करते हैं और अपरोक्ष परब्रह्मको त्यागदेते हैं अर्थात् ब्रह्मभी प्राप्त नहीं होता वह अज्ञानी संसारमें लय होते हैं अर्थात् उनका मोक्ष नहीं होता है ॥ २२२ ॥

मूलम्–ज्ञानकारणमज्ञानं यथा नोत्पद्यते भृशम् ॥ अभ्यासं कुरुते योगी सदा सङ्गविवर्जितम् ॥ २२३ ॥

टीका–जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है और अज्ञानका नाश होता है इसी योगअभ्यासको योगी सर्वदा सङ्गरहित होके अभ्यास करे ॥ २२३ ॥

मूलम्–सर्वेन्द्रियाणि संयम्य विषयेभ्यो विचक्षणः ॥ विषयेभ्यः सुषुप्त्यैव तिष्ठेत्संगविवर्जितः ॥ २२४ ॥

टीका–बुद्धिमान् योगी विषयोंसे इंद्रियोंको रोकके सङ्गरहित होके विषयके त्यागमें सुषुप्तिके समान स्थिर रहते हैं ॥ २२४ ॥

मूलम्-एवमभ्यसतो नित्यं स्वप्रकाशं प्रकाशते ॥ श्रोतुं बुद्धिसमर्थार्थं निवर्तन्ते गुरोर्गिरः ॥ तदभ्यासवशादेकं स्वतो ज्ञानं प्रवर्तते ॥ २२५ ॥

टीका-इसी प्रकार नित्य अभ्यास करनेसे साधकको आपही ज्ञानका प्रकाश होगा तब गुरुके वचनकी निवृत्ति होगी अर्थात् गुरुके उपदेशका अंत हो जायगा जब इतरवाक्य श्रवण करनेकी इच्छा निवृत्त होजायगी तब यह योगअभ्यासद्वारा आपही एक अद्वैतज्ञानमें प्रवृत्ति होगी ॥ २२५ ॥

मूलम्-यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ साधनादमलं ज्ञानं स्वयं स्फुरति तद्ध्रुवम् ॥ २२६ ॥

टीका-यह ब्रह्म किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता मन वाक्यकाभी गमन नहीं है परन्तु यह योगसाधनसे आपही निर्मल ज्ञान प्रकाश होता है ॥ २२६ ॥

मूलम्-हठं विना राजयोगो राजायोगं विना हठः ॥ तस्मात्प्रवर्तते योगी हठे सद्गुरुमार्गतः ॥ २२७ ॥

टीका-हठयोगके विना राजयोग और राजयोगके

विना हठयोग सिद्ध नहीं होता इस हेतुसे योगीको उचित है कि, योगवेत्ता सद्गुरुद्वारा हठयोगमें प्रवृत्त हो ॥ २२७ ॥

मूलम्–स्थिते देहे जीवति च योगं न श्रियते भृशम् ॥ इन्द्रियार्थोपभोगेषु स जीवति न संशयः ॥ २२८ ॥

टीका–जो मनुष्य इस शरीरसे योगका आसरा नहीं ग्रहण करते हैं वह केवल इंद्रियोंके भोग भोगनेके अर्थ संसारमें जीते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २२८ ॥

मूलम्–अभ्यासपाकपर्यन्तं मितान्नं स्मरणं भवेत् ॥ अन्यथा साधनं धीमान्कर्तुं पारयतीह न ॥ २२९ ॥

टीका–बुद्धिमान् साधक योग अभ्यासके आरंभसे अभ्याससिद्धिपर्यंत मिताहारी रहे अर्थात् प्रमाणका भोजन करे अन्यथा अर्थात् अप्रमाण भोजन करनेसे योगअभ्यासके पार न होगा अर्थात् सिद्ध न होगा २२९॥

मूलम्–अतीवसाधुसंलापं साधुसम्मतिबुद्धिमान् ॥ करोति पिण्डरक्षार्थं बह्वालापविवर्जितः ॥ २३० ॥ त्याज्यते त्यज्यते सङ्गं सर्वथा त्यज्यते भृशम् ॥ अन्यथा न लभेन्मुक्तिं सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ २३१ ॥

टीका-बुद्धिमान् साधक सभामें साधुके समान थोडा और प्रमाण वाक्य बोले और शरीरके रक्षार्थ थोडा भोजन करे और संगको सर्व प्रकारसे तजदे कदापि किसीके संगसें लिप्त न होय हे पार्वति! और दूसरे प्रकार कदापि मुक्ति नहीं पावेगा यह हम सर्वथा सत्य कहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २३० ॥ २३१ ॥

मूलम्-गुप्त्यैव क्रियतेऽभ्यासः संगं त्यक्त्वा तदन्तरे ॥ व्यवहाराय कर्तव्यो बाह्यसंगो न रागतः ॥ २३२ ॥ स्वेस्वे कर्मणि वर्तंते सर्वे ते कर्मसम्भवाः ॥ निमित्तमात्रं करणे न दोषोस्ति कदाचन ॥ २३३ ॥

टीका-साधक संगरहित होके एकान्त स्थानमें योगसाधन करे यदि संसारी मनुष्योंसे व्यवहार वर्तनेकी इच्छा करे तो अन्तर प्रीतिरहित होके बाह्यसंग करे और अपना आश्रम धर्म कर्मभी इसी प्रकार करता रहै इस हेतुसे कि, ज्ञानादि यावत् कर्म हैं सब कर्मानुसार होते हैं फल इच्छारहित होके केवल निमित्त मात्र कर्म करनेसे कदापि दोष नहीं है ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

मूलम्-एवं निश्चित्य सुधिया गृहस्थोपि यदाचरेत् ॥ तदा सिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २३४ ॥

टीका-इसी प्रकार निश्चयबुद्धिसे यदि गृहस्थभी योगअभ्यास करे तो वह अवश्य सिद्धि लाभ करेगा इसमें संशय नहीं है ॥ २३४ ॥

मूलम्-पापपुण्यविनिर्मुक्तः परित्यक्ताङ्गसाधकः ॥ यो भवेत्स विमुक्तः स्याद्गृहे तिष्ठन्सदा गृही ॥ २३५ ॥ न पापपुण्यैर्लिप्येत योगयुक्तो यदा गृही ॥ कुर्वन्नपि तदा पापान्स्वकार्यें लोकसंग्रहे ॥ २३६ ॥

टीका-जो साधक पाप पुण्यसे निर्लिप्त इन्द्रियसंगत्यागी है सोई गृही साधक गृहमें रहके मुक्त है योगयुक्त गृही पाप पुण्यमें बद्ध नहीं होता यदि संसारके संग्रहमें पापभी करेगा तो वह पाप उसको स्पर्श न करेगा ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

मूलम्-अधुना संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनमुत्तमम् ॥ ऐहिकामुष्मिकसुखं येन स्यादविरोधतः ॥ २३७ ॥

टीका-हे देवी ! अब उत्तम मन्त्रसाधन हम कहते हैं जिससे इस लोक और परलोक दोनों स्थानमें साधक आनन्दपूर्वक सुख भोगेगा ॥ २३७ ॥

मूलम्-यस्मिन्मन्त्रे वरे ज्ञाते योगसिद्धिर्भ-

वेत्खलु ॥ योगेन साधकेन्द्रस्य सर्वैश्वर्य-
सुखप्रदा ॥ २३८ ॥

टीका—यह उत्तम मन्त्रके ज्ञान होनेसे निश्चय योग सिद्ध होता है. साधकेन्द्रको यह योग सर्व ऐश्वर्य सुख-का दाता है ॥ २३८ ॥

मूलम्—मूलाधारेस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसम-
न्वितम् ॥ तन्मध्ये वाग्भवं बीजं विस्फु-
रन्तं तडित्प्रभम् ॥ २३९ ॥ हृदये कामबी-
जं तु बन्धूककुसुमप्रभम् ॥ आज्ञारविन्दे
शक्त्याख्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ २४० ॥
बीजत्रयमिदं गोप्यं भुक्तिमुक्तिफलप्र-
दम् ॥ एतन्मन्त्रत्रयं योगी साधयेत्सि-
द्धिसाधकः ॥ २४१ ॥

टीका—जो मूलाधार चतुर्दलसंयुक्त पद्म है, उसमें विद्युतके समान प्रभायुक्त वागबीजकी स्थिति है और ह्रदयकमलमें बन्धूकपुष्पके समान प्रभायुक्त कामबी-जकी स्थिति है और आज्ञाकमलमें कोटिचन्द्रकेसमान प्रभायुक्त शक्तिबीजकी स्थिति है यह बीजत्रय परम गोपनीय भोग और मुक्तिके दाता है यह तीनों मन्त्रका साधक योगी अवश्यसाधनकरे ॥ २३९ ॥ २४० ॥ २४१ ॥

मूलम्—एतन्मन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा न द्रुतं न

विलम्बितम् ॥ अक्षराक्षरसन्धानं निःसन्दिग्धमना जपेत् ॥ २४२ ॥

टीका-साधक गुरुसे यह मन्त्रका उपदेश लेके धीरे धीरे अक्षर अक्षर स्पष्ट उच्चारणपूर्वक स्थिर मन होके जप करे ॥ २४२ ॥

मूलम्-तद्गतश्चैकचित्तश्च शास्त्रोक्तविधिना सुधीः ॥ देव्यास्तु पुरतो लक्षं हुत्वा लक्षत्रयं जपेत ॥ २४३ ॥

टीका-बुद्धिमान् साधक एकाग्रचित्तसे शास्त्रविधिअनुसार देवीके समीपमें एक लक्ष होम करके तीन लक्ष जप करे ॥ २४३ ॥

मूलम्-करवीरप्रसूनन्तु गुडक्षीराज्यसंयुतम् ॥ कुण्डे योन्याकृते धीमाञ्जपान्ते जुहुयात्सुधीः ॥ २४४ ॥

टीका-बुद्धिमान् साधक जपके पीछे योन्याकारकुण्ड बनायके कनेरपुष्पके साथ गुड और दूध और घृत मिलायके होम करे ॥ २४४ ॥

मूलम्-अनुष्ठाने कृते धीमान्पूर्वसेवा कृता भवेत् ॥ ततो ददाति कामान्वै देवी त्रिपुरभैरवी ॥ २४५ ॥

टीका-बुद्धिमान् साधक इसीप्रकार अनुष्ठानपूर्वक

आराधना करके त्रिपुरभैरवी देवीको सन्तुष्ट करे तो उसको इच्छापूर्वक देवी फल देती है ॥ २४५ ॥

मूलम्-गुरुं सन्तोष्य विधिवल्लब्ध्वा मन्त्रवरोत्तमम् ॥ अनेन विधिना युक्तो मन्दभाग्योऽपि सिद्ध्यति ॥ २४६ ॥

टीका-साधक विधिपूर्वक गुरुको संतोष करके यह उत्तम मन्त्र ग्रहण करे इस विधानसंयुक्त ग्रहण करनेसे मन्दभाग्य साधकभी सिद्धि लाभ करते हैं ॥२४६॥

मूलम्-लक्षमेकं जपेद्यस्तु साधको विजितेन्द्रियः ॥ १४७ ॥ दर्शनात्तस्य क्षुभ्यन्ते योषितो मदनातुराः ॥ पतन्ति साधकस्याग्रे निर्लज्जा भयवर्जिताः ॥ २४८ ॥

टीका-योगी इन्द्रियनिग्रहपूर्वक एक लक्ष जप करे तो उसके दर्शनमात्रसे कामातुर स्त्रियें मोहित होयके साधकके आगे निर्लज्ज और भयरहित होके गिरती हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

मूलम्-जपेन च द्विलक्षेण ये यस्मिन्विषये स्थिताः॥आगच्छन्ति यथातीर्थं विमुक्तकुलविग्रहाः॥ ददति तस्य सर्वस्वं तस्यैव च वशे स्थिताः॥ २४९ ॥

टीका-यह मन्त्र दो लक्ष जप करनेसे कामिनी स्त्रियें साधकके समीप इस प्रकार आती हैं कि, जैसे

कुलीना तीर्थोंमें भय लज्जा रहित होके जाती हैं और साधकके वशमें होके अपना सर्वस्व उसको देती हैं२४९

मूलम्–त्रिभिर्लक्षैस्तथाजप्तैर्मण्डलीकाः समण्डलाः ॥ २५० ॥ वशमायान्ति ते सर्वे नात्र कार्या विचारणा ॥ षड्भिर्लक्षैर्महीपालं सभृत्यबलवाहनम् ॥ २५१ ॥

टीका–तीन लक्ष जप करनेसे मंडलसहित मंडलपती राजा साधकके वशमें होजाँयगे इसमें संशय नहीं है और छः लक्ष जप करनेसे बलवाहन संयुक्त राजा साधकके वश होजायगा ॥ २५० ॥ २५१ ॥

मूलम्–लक्षैर्द्वादशभिर्जप्तैर्यक्षरक्षोरगेश्वराः॥ वशमायान्तिते सर्वे आज्ञां कुर्वन्तिनित्यशः २५२

टीका–यह मन्त्र बारह लक्ष जप करनेसे यक्ष और राक्षस और पन्नग यह सब वशमें होके साधककी नित्य आज्ञा पालन करते हैं ॥ २५२ ॥

मूलम्–त्रिपञ्चलक्षजप्तैस्तु साधकेन्द्रस्य धीमतः॥सिद्धविद्याधराश्चैव गन्धर्वाप्सरसांगणाः ॥ २५३ ॥ वशमायान्ति ते सर्वे नात्र कार्या विचारणा ॥ हठाच्छ्रवणविज्ञानं सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥ २५४ ॥

टीका–पन्द्रहलक्ष जप करनेसे सिद्ध और विद्याधर

और गन्धर्व और अप्सरा यह सब बुद्धिमान् साधकके वशमें होजातेहैं इसमें संदेह नहीं है और साधकको हठसे विशेष श्रवणशक्ति होगी और सर्ववस्तुका ज्ञान होगा ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

मूलम्–तथाष्टादशभिर्लक्षैर्देहेनानेन साधकः॥ उत्तिष्ठन्मेदिनीं त्यक्त्वा दिव्यदेहस्तु जायते ॥ भ्रमते स्वेच्छया लोके छिद्रां पश्यति मेदिनीम् ॥ २५५ ॥

टीका–जो साधक अठारह लक्ष जप करेगा वह भूमिको त्यागके दिव्य देह होके आकाशमार्गसे संसारमें इच्छापूर्वक भ्रमण करेगा, और पृथ्वीके छिद्रोंको देखेगा अर्थात् पृथ्वीमें प्रवेश करनेके मार्ग देखेगा॥२५५॥

मूलम्–अष्टाविंशतिभिर्लक्षैर्विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ साधकस्तु भवेद्धीमान्कामरूपो महाबलः ॥ २५६ ॥ त्रिंशल्लक्षैस्तथाजप्तैर्ब्रह्मविष्णुसमो भवेत ॥ रुद्रत्वं षष्टिभिर्लक्षैरमरत्वमशीतिभिः ॥ २५७ ॥कोटयेकया महायोगी लीयते परमे पदे ॥ साधकस्तु भवेद्योगी त्रैलोक्ये सोऽतिदुर्लभः ॥२५८॥

टीका–जो बुद्धिमान् साधक अट्ठाईस लक्ष जप करेगा वह महाबल कामरूपी और विद्याधरपति होजायगा और तीस लक्ष जप करनेसे साधक ब्रह्मा विष्णुकेसमान

होजायगा और साठ लक्ष जप करनेसे रुद्रके समान होजायगा और अस्सी लक्ष जप करनेसे साधक सर्व भूतोंको प्रिय देव होजायगा और एककोटि जप करनेसे साधक महायोगी होयके परमपदमें लीन होजाता है. हे पार्वति ! इसप्रकार योगी त्रिभुवनमें दुर्लभ है ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ २५८ ॥

मूलम्–त्रिपुरे त्रिपुरन्त्वेकं शिवं परमकारणम् ॥ २५९ ॥ अक्षयं तत्पदं शान्तमप्रमेयमनामयम् ॥ लभतेऽसौ न सन्देहो धीमान्सर्वमभीप्सितम् ॥ २६० ॥

टीका–हे पार्वति! त्रिपुरस्थानमें एकशिवहीपरमकारणस्वरूप हैं उनका चरणकमल अक्षय शान्तअप्रमेय अर्थात् प्रमाणरहित अनामय अर्थात् रोगरहित उनका पद बुद्धिमान् योगीलोगही इच्छापूर्वक लाभ कररहते हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ २५९ ॥ २६० ॥

मूलम्–शिवविद्या महाविद्या गुप्ता चाग्रे महेश्वरी ॥ मद्भाषितमिदं शास्त्रं गोपनीयमतो बुधैः २६१

टीका–हे महादेवि ! यह हमारी कहीहुई महाविद्याकोही शिवविद्या कहते हैं यह विद्या सर्वप्रकार गोपनीय है इस योगशास्त्रको बुद्धिमान् लोग कदापि प्रकाश नहीं करते हैं ॥ २६१ ॥

मूलम्–हठविद्या परंगोप्या योगिना सिद्धि-

मिच्छता ॥ भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशिता ॥ २६२ ॥

टीका-सिद्धिकांक्षी योगीलोग इस हठविद्याको अतिगोपित रक्खें यह गोप्य रखनेसे वीर्यवती रहतीहै और प्रकाश करनेसे निर्वीर्या होजातीहै ॥ २६२ ॥

मूलम्-य इदं पठते नित्यमाद्योपान्तं विचक्षणः योगसिद्धिर्भवेत्तस्य क्रमेणैव न संशयः ॥ स मोक्षं लभते धीमान्य इदं नित्यमर्चयेत् ॥ २६३ ॥

टीका-जो विद्वान् यह शिवसंहिताका नित्य आद्योपान्त पाठ करेगा उसको क्रमसे अवश्य योगसिद्धि होगी और जो बुद्धिमान् इस ग्रन्थका नित्य पूजन करेगा उसको मुक्ति लाभ होगी ॥ २६३ ॥

मूलम्-मोक्षार्थिभ्यश्च सर्वेभ्यः साधुभ्यः श्रावयेदपि ॥ २६४ ॥ क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथम्भवेत् ॥ तस्मात्क्रियाविधानेन कर्तव्या योगिपुंगवैः ॥ २६५ ॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टः सन्त्यक्तान्तरसंगकः ॥ गृहस्थश्चाप्यनासक्तः स मुक्तो योगसाधनात् ॥ २६६ ॥

टीका-मोक्षार्थी और सर्व साधु मनुष्य उनको यह शिवसंहिताग्रंथ सुनाना. जो क्रियासे युक्त होगा उसको

सिद्धि प्राप्त होगी क्रियाहीन मनुष्यको क्या होसक्ताहै अर्थात् सिद्धि लाभ नहींहोसकती विधानपूर्वकक्रियाका अनुष्ठान करे तो इच्छापूर्वक लाभसे सन्तुष्ट होगा और जो गृहस्थ होगा और इन्द्रियोंमें आसक्त नहोगासोमनुष्य योगसाधनसे मुक्तहोगा ॥२६४॥२६५॥ २६६ ॥

मू०-गृहस्थानां भवेत्सिद्धिरीश्वराणां जपेनवै ॥ योगक्रियाभियुक्तानां तस्मात्संयततेगृही २६७

टीका-योगक्रियावान् गृहस्थ लोगोंको जप करनेसे सिद्धि प्राप्त होगी इस हेतुसे योग साधनमें गृहस्थ मनुष्यको यत्न करना उचित है ॥ २६७ ॥

मूलम्-गेहे स्थित्वा पुत्रदारादिपूर्णः सङ्गं त्यक्त्वा चान्तरे योगमार्गे ॥ सिद्धेश्चिह्नं वीक्ष्य पश्चाद् गृहस्थः क्रीडेत्सो वै सम्मतं साधयित्वा॥२६८॥

टीका-जो गृहस्थ गृहमें रहके स्त्रीपुत्रादिसे पूर्ण होके अंतरीय सबसे त्यागपूर्वक योगसाधनसे प्रवृत्त होय सो सिद्धिचिह्न अवलोकनपूर्वक साधना करके सर्वदा आनन्दमें क्रीडा करेगा ॥ २६८ ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगशास्त्रे पंचमः पटलः समाप्तः ॥ ५ ॥ शुभम् ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

॥ श्रीः ॥

उमामहेश्वरमाहात्म्यम् ।

उमा भगवतीयेयं ब्रह्मविद्येति कीर्तिता ॥
रूपयौवनसम्पन्ना वधूर्भूत्वात्र सा स्थि-
ता ॥ १ ॥ नानाजातिवधूनां हि बिंबभूतामम-
हेश्वरी ॥ २ ॥ यस्याः प्रसादतः सर्वः स्वर्गं
मोक्षं च गच्छति ॥ इह लोके सुखं तद्वज्जं-
तुर्देवादिकोपि वा ॥ ३ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्त-
था रुद्रः शक्राद्याः सर्वदेवताः ॥ कटाक्षपा-
ततो यस्या भवंति न भवंति च ॥ ४ ॥ पीनो-
न्नतस्तनी प्रौढजघना च कृशोदरी ॥ चंद्रा-
नना मीननेत्रा केशभ्रमरमंडिता ॥ ५ ॥
सर्वांगसुंदरी देवी धैर्यपुंजविनाशिनी ॥
कांचीगुणेन चित्रेण वलयांगदनूपुरैः ॥ ६ ॥
हारैर्मुक्तादिसंजातैः कंठाद्याभरणैरपि ॥
मुकुटेनापि चित्रेण कुंडलाद्यैः सहस्र-
शः ॥ ७ ॥ विराजिता ह्यनौपम्यरूपाभूष-
णभूषणा ॥ जननी सर्वजगतो ह्यष्टव-
र्षा चिरंतनी ॥ ८ ॥ तया समेतं पुरुषं तत्प-

तिं तद्गुणाधिकम् ॥ ब्रह्मादीनां प्रभुं नाना-सर्वभूषणभूषितम् ॥ ९ ॥ द्वीपिचर्मावृतं शश्वदथवापि दिगंबरम् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वांगं ब्रह्ममूर्धौघमालिनम् ॥१०॥ तथैव चंद्रखंडेन विराजितजटातटम् ॥ गंगाधरं स्मरमुखं गोक्षीरधवलोज्ज्वलम् ॥ ११ ॥ कंदर्पकोटिसदृशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ सृष्टिस्थित्यंतकरणं सृष्टिस्थित्यंतवर्जितम् ॥ १२ ॥ पूर्णेन्दुवदनांभोजं सूर्यसोमाग्निवर्चसम् ॥ सर्वांगसुंदरं कंबुग्रीवं चातिमनोहरम् ॥ १३ ॥ आजानुबाहुं पुरुषं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ पद्मासनसमासीनं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥ १४ ॥ वामदेवं महादेवं गुरूणां प्रथमं गुरुम् ॥ स्वयंज्योतिःस्वरूपंतमानंदात्मानमद्वयम् ॥ ॥ १५ ॥ :यतो हिरण्यगर्भोयं विराजो जनकः पुमान् ॥ जातः समस्तदेवानामन्येषां च नियामकः ॥ १६ ॥ नीलकंठममुं देवं विश्वेशं पादनाशनम् ॥ हृदि पद्मे-

ऽथवा सूर्ये वह्नौ वा चंद्रमंडले ॥१७॥ कैलासादिगिरौ वापि चिंतयेद्योगमाश्रितः ॥ एवं चिंतयतस्तस्य योगिनो मानसं स्थिरम् ॥१८॥ यदा जातं तदा सर्वप्रपंचरहितं शिवम् ॥ प्रपंचकरणं देवमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १९ ॥ प्रयाति स्वात्मना योगी पुरुषं दिव्यमद्भुतम् ॥ तमसः स्वात्ममोहस्य परं तेन विवर्जितम् ॥२०॥ साक्षिणं सर्वबुद्धीनां बुद्ध्यादिपरिवर्जितम् ॥ उमासहायो भगवान्सगुणः परिकीर्तितः ॥२१॥ निर्गुणश्च स एवायं न यतोन्योस्ति कश्चन ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः शक्रो देवसमन्वितः ॥ २२॥ अग्निः सूर्यस्तथा चन्द्रः कालः सृष्ट्यादिकारणम् ॥ एकादशेंद्रियाण्यंतःकरणं च चतुर्विधम् ॥ २३॥ प्राणाः पंच महाभूतपंचकेन समन्विताः ॥ दिशश्च प्रदिशस्तद्वदुपरिष्टादधोपि च ॥ २४ ॥ स्वेदजादीनि भूतानि ब्रह्मांडं च विरिञ्चिः ॥

विराड्‌हिरण्यगर्भश्च जीव ईश्वर एव च ॥ २५ ॥ मायातत्कार्यमखिलं वर्तते सदसच्च यत्॥यच्च भूतं यच्च भव्य तत्सर्वं स महेश्वरः ॥ २६ ॥

इति श्रीमदुमामहेश्वरमाहात्म्यं संपूर्णम्।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-मुम्बई.